संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : ११
अंक : १०२
जून २००१
आषाढ मास
विक्रम.सं. २०५८

हिन्दी

कब सुमिरोगे राम, साधो ! कब सुमिरोगे राम... बालपन खेल गँवायो, यौवन में काम।
साधो ! कब सुमिरोगे राम ?
वृद्धत्व में अंग कम्पन लागे... कम्पन लागे... आखिर मौत निशान... मौत निशान...
साधो ! कब सुमिरोगे राम ?
ये जीव दो दिन का मेहमान... दो दिन का मेहमान... साधो ! कब सुमिरोगे राम ?

सत्रहवीं सदी में अहमदाबाद का महाकामी युवराज पुष्पसेन अनाथ महासुंदरी सुयशा को अपनी भोग्या न बना सका, अंत में सुयशा का शिष्य बना।

(सुयशा को ईश्वर प्राप्ति... कैसे ? पढ़िये अगले अंक में...)
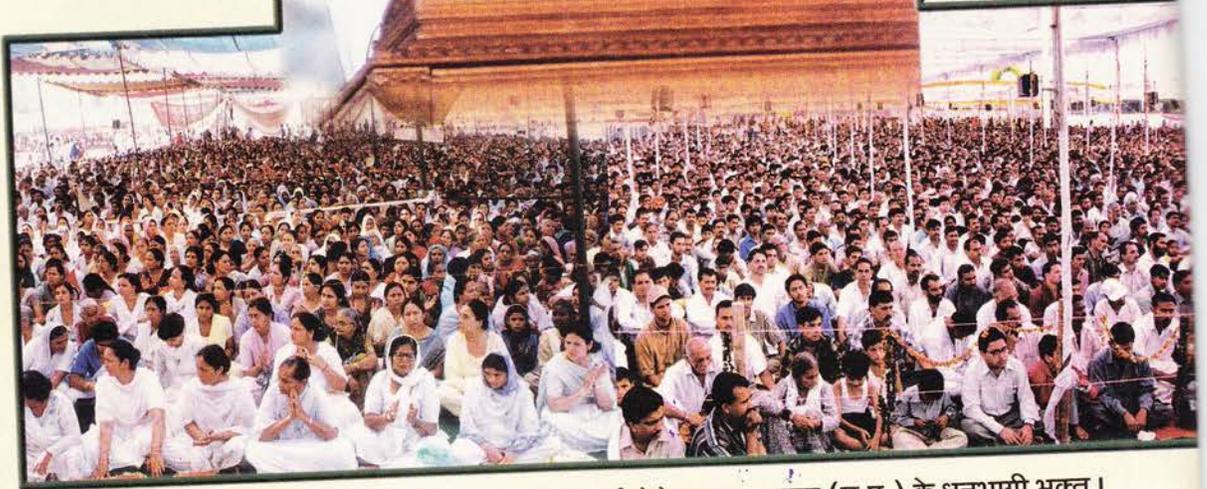
पूज्यश्री की ज्ञानगंगा में गोता लगाकर कृतार्थ होते हुए सहारनपुर (उ.प्र.) के धनभागी भक्त।
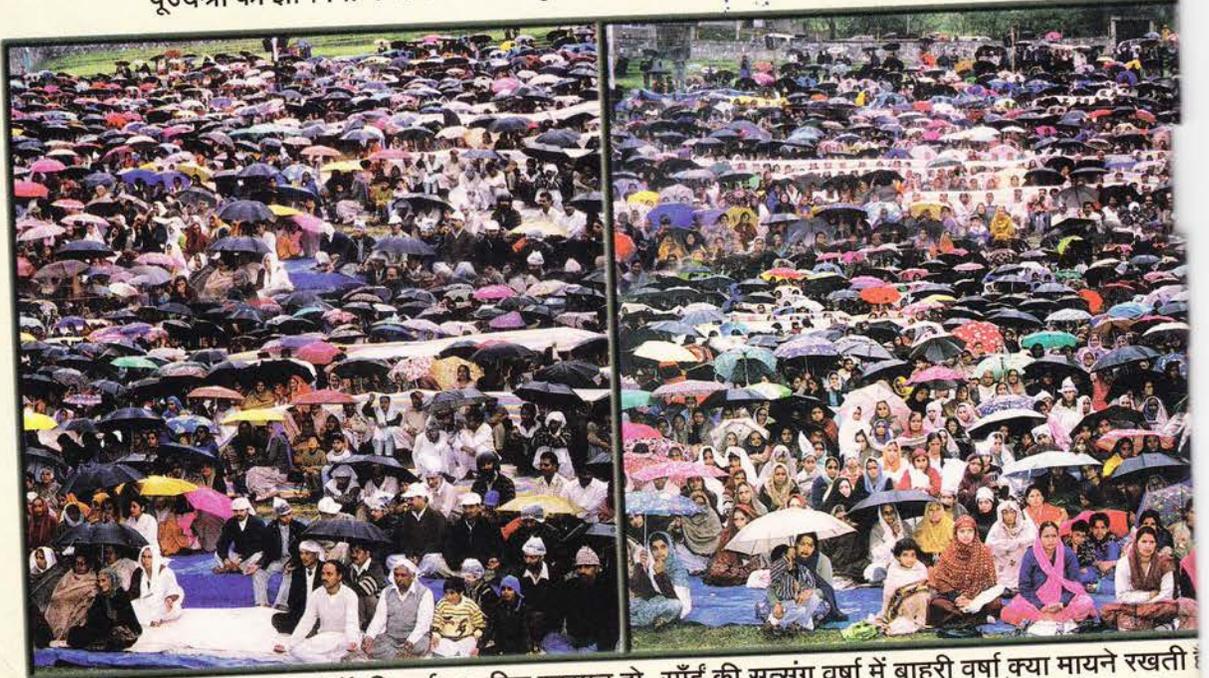
आँधी हो, तूफान हो या मेघों की गर्जना सहित बरसात हो, साँईं की सत्संग वर्षा में बाहरी वर्षा क्या मायने रखती है सत्संग प्रेमी, प्रभु प्रेमी पुण्यात्माओं के लिए... (कुल्लू, हिमाचल प्रदेश)

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : ११
अंक : १०२
९ जून २००१
आषाढ़ मास, विक्रम संवत् २०५८ (गुज. २०५७)

सम्पादक : क. रा. पटेल
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
E-Mail : ashramamd@ashram.org
Web-Site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग
SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

ओ मानव !

ओ मानव ! तुम मानव कुल के कर्तव्यों का ध्यान करो ।
मानवता के चिर मूल्यों की तुम सच्ची पहचान करो ॥
भौतिकता की चकाचौंध में क्यों अपना पथ भूल गये ।
पीकर महामोह की मदिरा तुम भूलों में झूल गये ॥
सत्यं-शिवं-सुन्दरं-पथ पर तुम अभिनव अभियान करो ॥
अन्यायों-अत्याचारों का कहीं दीखता छोर नहीं ।
कहने को तो दिन होता पर मानवता का भोर नहीं ॥
सत्य-न्याय-सेवा-संयम का जीवन में सम्मान करो ॥
मानवता के बिना विश्व में मानव का शृंगार कहाँ ?
आग बिना निष्प्राण काष्ठ भी हो सकता अंगार कहाँ ?
उठो-लोकमंगल के हित में तुम कर्मामृत-पान करो ॥
व्यथित हो रही भारतमाता उसकी करुण पुकार सुनो ।
आर्य-संस्कृति त्राण माँगती उसका हाहाकार सुनो ॥
तुम मानव हो, मानवता का उज्ज्वल नवल विहान करो ।
ओ मानव ! तुम मानव कुल के कर्तव्यों का ध्यान करो ॥

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश''
हिन्दू सहकार संस्थान, उन्नाव (उ.प्र.) ।

*

प्यारे युवान भारत की शान...

जहाँ काल की दाल नहीं गलती थी ।
मृत्यु जहाँ इच्छानुकूल चलती थी ॥
जहाँ किशोर नन्हें शेरों से खेल खेले ।
वीर जहाँ लाखों पर भारी पड़े अकेले ॥
उसी वंश का तू बालक निज को तुझे बदलना होगा ।
प्यारे युवान ! भारत की शान ! फिर से तुझे सम्हलना होगा ॥
प्रेरणा ले संयमी उन वीर महामानवों से ।
बच निकल मेरे लाल सुन्दर वेश के इन दानवों से ॥
गर चाहता सिरमौर हो इस विश्व का तेरा वतन ।
तो त्याग करके स्वार्थ कर निज संस्कृति का अनुकरण ॥
हे वीर ! शुभ संस्कृति समक्ष तू झुका निजशीश को ।
जो जन्म देती सत्य बल से जगत में जगदीश को ॥
निज संस्कृति की राह पर चल तू फिर असफल न होगा ।
प्यारे युवान ! भारत की शान ! फिर से तुझे सम्हलना होगा ॥

- नन्द किशोर शास्त्री, अमदावाद ।

*

दास तेरा तू दरश दिखा दे...

छवि तो अपनी तू भगवन् दिखा दे मुझे ।
दास तेरा तू दरश दिखा दे मुझे ॥
दुःख और सुख से भरी है यह दुनिया तेरी ।
मोह-माया में उलझी है चुनरी मेरी ॥
मोह-माया से भगवन् बचा ले मुझे ।
दास तेरा तू दरश दिखा दे मुझे ॥
न खुशी की तमन्ना न गम की फिकर ।
न हो लालच किसी के न धन की फिकर ॥
गर है शक्ति तो भक्ति दिला दे मुझे ।
दास तेरा तू दरश दिखा दे मुझे ॥
आते-जाते न देखा पवन को कभी ।
यूँ छिपा तू दिखा न अधम को कभी ॥
आके नटवर तू लीला दिखा दे मुझे ।
दास तेरा तू दरश दिखा दे मुझे ॥

- महेन्द्र पाल सहगल
नई दिल्ली ।

*

सद्गुरु !...

गुरुदेव अद्भुत रूप, परधाम मांहि विराजते ।
उपदेश देते सत्य का, इस लोक में आजावते ॥
दुर्गम्य का अनुभव करा, भय से पर लेजावते ।
पर धाम में पहुँचाय कर, स्वराज्य पद दिलवावते ॥
छुड़वाय कर सब कामना, कर देय हैं निष्कामना ।
सब कामनाओं का बता घर, पूर्ण करते कामना ॥
मिथ्या विषय सुख से हटा, सुख सिन्धु देते हैं बता ।
सुख सिन्धु जल से पूर्ण, अपना आप देते हैं जता ॥

- भोले बाबा

सत्यस्वरूप की जिज्ञासा

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

जब बुद्धि सात्त्विक होती है तब बुद्धि में बुद्धि के प्रकाशक के विषय में जानने की जिज्ञासा होती है।

कइयों की तर्कप्रधान बुद्धि होती है तो कइयों की स्वीकृतिप्रधान बुद्धि होती है । जिसकी बुद्धि तर्कप्रधान होगी उसे प्रश्न उठेगा कि जगत का रचयिता कौन है ? जिसकी बुद्धि स्वीकृतिप्रधान होगी वह स्वीकार करेगा कि जगत है तो इसका रचयिता भी है। रचयिता को मानने लग जाये - वह है भक्त और रचयिता को जानने की जिज्ञासा करे - वह है जिज्ञासु । जिज्ञासु जानकर फिर मानता है और भक्त मानकर फिर परमेश्वर के स्वरूप को जान लेता है।

जब वह परमेश्वर के स्वरूप को जान लेता है तब उसकी सारी हृदय-ग्रंथियाँ खुल जाती हैं। सृष्टि के सारे रहस्य उसके आगे प्रगट हो जाते हैं । फिर उसे संसार की विचित्रता देखकर दुःख नहीं होता। हाँ, दुःखियों को देखकर करुणा होती है। दुःखियों को भी वह सुखी होने के रास्ते पर ले चलता है । साधारण लोग जिस प्रकार जगत को सच्चा मानकर जरा-जरा बात में सुखी-दुःखी होते हैं, वैसे पूर्ण भक्त या ज्ञानी सुखी-दुःखी नहीं होते है । उसे सुख-दुःख मन का खिलवाड़ मात्र लगता है। उसके लिए सुख भी मिथ्या है, दुःख भी मिथ्या है। खाना भी मिथ्या है, सोना भी मिथ्या है। जीवन भी मिथ्या है, मृत्यु भी मिथ्या है । सत्यस्वरूप एक परमात्मा है । वही ज्ञानस्वरूप एवं अनंत ब्रह्म है। **सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म...** ऐसे सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनंतस्वरूप ब्रह्म में वह जाग जाता है।

इस सत्य को जानने की जिज्ञासा बहुत पुण्य से उत्पन्न होती है और बहुत पुण्य उत्पन्न भी करती है। एक बार साधक के हृदय में अपने स्वरूप को पाने की जिज्ञासा उत्पन्न हो जाये तो फिर सद्गुरु उसे हँसते-खेलते, विनोद करते हुए उस दरबार में ले जाते हैं, जहाँ पहुँचने के बाद फिर पतन नहीं होता है । ...लेकिन हमारी जिज्ञासा तीव्र होनी चाहिए।

सत्यस्वरूप को पाने की जिज्ञासा तीव्र हो गयी तो समझो, आपके भाग्य में चार चाँद लग गये। जिनके कल्मष क्षीण हो जाते हैं, दूर हो जाते हैं उन्हीं को अपने राम में आराम पाने की इच्छा होती है।

हम लोग अपने को धार्मिक मानते हैं लेकिन धर्म का उद्घाटन हृदय में नहीं होता है। धर्मानुष्ठान करने से हृदय में वैराग्य होना चाहिए। **धर्म ते बिरति, योग ते ज्ञाना** । वैराग्य उत्पन्न हो गया तो वह भी पर्याप्त नहीं है, फिर योग की आवश्यकता होती है । इन्द्रिय-संयम करके, अपने उद्गम-स्थान परमात्मा में विश्रांति पाना - यह योग है । यह योग ही सत्यस्वरूप के ज्ञान को प्रगट कर देता है।

केवल वेदान्त के विचार शुष्कता ले आयेंगे । अकेला योग लय ले आयेगा । अकेला त्याग अभिमान ले आयेगा। अगर ज्ञान होगा तो अहंकार का विलय होगा।

बाबा काली कमलीवाले द्वारा रचित **'पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश'** में आता है :

वशिष्ठजी के पौत्र और शक्ति के पुत्र पाराशरजी मित्रा के पुत्र मैत्रेय से कहते हैं :

''पहले तो यह अभिमान था कि : 'मैं देह हूँ।' अगर आत्मविचार करके देहाध्यास नहीं मिटाया तो वेष बनाने का दूसरा अभिमान आ जायेगा कि : 'मैं साधु हूँ... मेरा बड़ा आश्रम है।' इस अभिमान को निकालने के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। यह जीव कोई-न-कोई अभिमान पकड़ लेता है और अभिमान ही बंधन का कारण बन जाता है।''

एक बार उस परब्रह्म परमात्मा को पाने की तीव्र जिज्ञासा हो जाये और कलुषित संस्कारों को छोड़ने की इच्छा हो जाये तो ब्रह्मवेत्ता महापुरुष

तुमको भगवद्स्वरूप में हँसते-खेलते पहुँचा देंगे, तुमको पता भी न चलेगा।

ब्रह्मविद्या, सत्यस्वरूप का ज्ञान कोई मजदूरी करके पाने की चीज़ नहीं है। यह तो शहंशाहों का मार्ग है। इस ब्रह्मविद्या के द्वारा जिनके संशय क्षीण हो गये हैं, वे यह नहीं सोचते कि : 'यह उपासना ठीक है या वह उपासना ठीक है ? श्रीराम की भक्ति बड़ी है कि श्रीकृष्ण की भक्ति बड़ी है ? योग बड़ा है कि ज्ञान बड़ा है ? सत्संग बड़ा है कि कीर्तन बड़ा है ?' ऐसी दुविधाएँ जिनकी शांत हो गयी हैं उनके प्रत्येक कार्य सहज-स्वाभाविक होते हैं, उन्हें करने नहीं पड़ते।

वे ज्ञानवान् महापुरुष स्वर्ग की लालच से अथवा नर्क के भय से सत्कर्म नहीं करते हैं, वाहवाही की लालच से लोककल्याण के कार्य नहीं करते हैं और निंदा के भय से विशुद्ध कार्य नहीं छोड़ते हैं। उनका तो सहज स्वभाव होता है- **सर्वभूतहिते रताः।** फिर उन कल्याण के कार्यों के लिए चाहे उन्हें कष्ट सहना पड़े तो भी उनके लिए विनोद है और यश-अपयश मिल जाये तो भी उनके लिए विनोद है।

वे महापुरुष अपना कोई प्रयोजन लेकर नहीं चलते हैं, वे अपना स्वार्थ लेकर नहीं चलते हैं, उनका सहज स्वभाव होता है। हम लोग कोई-न-कोई स्वार्थ-प्रयोजन लेकर चलते हैं।

प्रयोजन तीन प्रकार के होते हैं : (१) सामाजिक (२) धार्मिक (३) आध्यात्मिक। ज्ञानवान् महापुरुषों का न धार्मिक प्रयोजन होता है, न सामाजिक प्रयोजन होता है और न ही आध्यात्मिक प्रयोजन होता है। उनकी प्रवृत्ति निष्प्रयोजन भी नहीं होती वरन् निष्काम प्रवृत्ति होती है। उनका सहज स्वभाव होता है- जगाना, उनका सहज स्वभाव होता है- शीतल। ज्ञानवान् को पहचानने के लिए शास्त्रों ने कई शुभ लक्षण बतलाये हैं। उनमें प्रमुख लक्षण यह है कि उनके श्रीचरणों में आदरसहित चुपचाप बैठने से हृदय में शांति आने लग जाये। यदि ऐसा होता है तो समझ लो कि विश्वनियंता के साथ उनका संबंध जुड़ा है। ऐसे महापुरुषों के मार्गदर्शन से हमारा जीवन भी समुन्नत हो सकता है और हमें उन्नत करने का उन पर कोई बोझा नहीं होता, उनकी स्वाभाविक स्थिति होती है।

किसीने उन पर बोझा नहीं डाला है कि : 'आपका यह कर्तव्य है कि उपदेश दें, सत्संग करें, आश्रम सँभालें, लोगों से मिलें...' नहीं, उनके ऊपर कोई बोझ नहीं है। जब साधक को बोध हो जाता है तो गुरुदेव भी ऐसा नहीं कहते कि : 'अब तुम यह करना।' गुरु भी स्वाभाविक कहते हैं कि : 'बेटा ! हो सके तो ऐसे जीना।' वह भी यदि शिष्य पूछता है तो... नहीं तो गुरु बोलते हैं कि : 'हम भी मुक्त, तुम भी मुक्त।'

भावनगर में एक संत पधारे। वहाँ कोई साधक गायत्री पुरश्चरण कर रहा था। उसने संत के पैर पकड़े और कहा : ''गुरु महाराज ! आप मुझे एक बार साक्षात्कार करा दीजिये। फिर आप जो कहेंगे, वही करूँगा।''

संत : ''अरे ! यदि साक्षात्कार हो जाये तो आज्ञा करने की क्या ज़रूरत है ? फिर तो तेरे द्वारा जो भी होगा उससे लोगों का कल्याण होने लगेगा।''

शिष्य को बोध होने के बाद, सत्यस्वरूप का ज्ञान होने के बाद सद्गुरु आज्ञा नहीं करते कि : 'तुम यह करना।' यदि शिष्य पूछता है कि : 'क्या आज्ञा है गुरुदेव ?' फिर गुरुदेव जो कह दें। बोलना पड़ता है तो बोल देते हैं बाकी उनको ऐसा नहीं होता कि : 'शिष्य ऐसा करे, वैसा करे... मेरा नाम उज्ज्वल करे... मेरे सिद्धान्त को फैलाये...' ऐसी इच्छा ज्ञानवानों को नहीं होती है।

वे अपने जागे हुए शिष्य को आज्ञा नहीं देते। हाँ, अगर जागे हुए में थोड़ी कमी है, थोड़ा कच्चापन है तो आदेश देंगे कि : 'ऐसा-ऐसा करो...' ताकि कहीं गिर न जाये। आदेश भी उसके कल्याण के लिए देंगे। ऐसे ज्ञानवान् महापुरुषों के लिए ही अष्टावक्र महाराज कहते हैं : **'तस्य तुलना केन जायते ?'** उसकी तुलना किससे करें ? ऐसे ज्ञानवान् महापुरुषों के संकेत के अनुसार चलने से प्रत्येक जीव शिवपद को प्राप्त कर सकता है। शर्त इतनी ही है कि उसमें सत्यस्वरूप के ज्ञान को पाने की तीव्र जिज्ञासा हो।

निःस्पृहता का प्रभाव

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥

'अत्यंत वश में किया हुआ चित्त जिस काल में परमात्मा में ही भलीभाँति स्थित हो जाता है, उस काल में संपूर्ण भोगों से स्पृहारहित पुरुष योगयुक्त है, ऐसा कहा जाता है।' (गीता : ६.१८)

जिस काल में तुम्हारे चित्त में कोई कामना नहीं रहती, कोई इच्छा नहीं रहती, कोई आकर्षण-विकर्षण नहीं रहता, उस काल में तुम्हारा चित्त अलौकिक योगामृत का पान करता है। वह योगामृत ऐसा है जिसके आगे पृथ्वी के भोग तो क्या, स्वर्ग का अमृत भी तुच्छ हो जाता है।

कर्मनिष्ठ व्यक्ति खूब पुण्यकर्म करता है और मरने के बाद स्वर्ग के अमृत को पाता है, तपस्वी तप करता है बदले में ऐश्वर्य पाता है, लेकिन जो भगवान का प्यारा है उसका चित्त भगवान में लीन हो जाता है और वह भगवद्स्वरूप हो जाता है।

चित्त एक अजीब नट है। वह जिस समय जिसका अनुकरण करता है, तब वही हो जाता है। यदि चित्त नश्वर का अनुकरण करता है तो नाश को प्राप्त होता है और यदि शाश्वत् की ओर, परमात्मा की ओर जाता है तो परमात्मा में लीन हो जाता है।

जैसे, भगवान शंकर ने भस्मासुर को वरदान दे दिया कि : 'तू जिसके भी सिर पर हाथ रखेगा वह वहीं भस्म हो जायेगा।' भस्मासुर वरदान पाकर शिवजी को ही भस्म करने के लिए दौड़ा। भस्मासुर के चित्त में भगवान शिव को ही भस्म करके पार्वती को अपना बनाने की वासना थी । अतः मलिन वासना के कारण वह शिवजी के पीछे भागा जा रहा था। आगे शिव, पीछे भस्मासुर।

शिवजी ने मन-ही-मन भगवान विष्णु के स्वरूप का स्मरण किया। भगवान विष्णु मार्ग में एक अत्यंत सुन्दरी का रूप लेकर खड़े हो गये। मोहिनी रूपधारी भगवान विष्णु को देखकर भस्मासुर मोहित हो गया एवं उनसे विवाह की याचना करने लगा।

भस्मासुर को अपने जाल में फँसा देखकर मोहिनी ने कहा :

''मैं आपसे विवाह करने को तैयार हूँ परन्तु मेरी एक शर्त है। जो व्यक्ति मुझसे विवाह करना चाहता हो, उसे मेरे साथ नृत्य करना होगा, मेरी नृत्यकला के अनुसार उसे भी नृत्य करना पड़ेगा।''

भस्मासुर ने स्वीकृति दे दी और मोहिनी के साथ भस्मासुर ने नृत्य करना आरंभ कर दिया। नृत्य करते-करते मोहिनी रूपधारी भगवान विष्णु ने अपने मस्तक पर हाथ रखा। भस्मासुर ने भी जैसे ही अपना हाथ अपने मस्तक पर रखा, क्षणभर में ही वह वहीं भस्म हो गया।

ऐसे ही तुम्हारे चित्त को धर्म में, कर्म में, यज्ञ में, दान में, पुण्य में, इधर-उधर घुमाकर जब परमात्मा में लीन किया जाता है, तुम्हारी वासनाएँ भस्म हो जाती हैं, तुम्हारी ममता नष्ट हो जाती है, तुम्हारा अहंकार नष्ट हो जाता है । फिर तुम योगयुक्त हो जाते हो।

इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥

स्पृहा और कामना तब तक रहती है जब तक 'तुम' रहते हो अर्थात् अहं रहता है। जब 'तुम' नष्ट हो गये तो स्पृहा कौन करेगा ? कामना कौन करेगा ? काम-क्रोध-लोभ क्यों सताते हैं ? क्योंकि 'तुम' बने हो। जब तक 'तुम' बने रहोगे तब तक

काम-क्रोध-लोभ-मोह भी रहेंगे। जब तक 'तुम' रहोगे तब तक दुःख, अशांति और चिंता भी रहेगी। वास्तव में काम-क्रोध-लोभ-मोह या दुःख-अशांति-चिंता-भय आदि न शरीर में हैं और न आत्मा में, वे तो हैं तुम्हारे 'मैं' में यानी अहं में। जब 'मैं' यानी परिछिन्न 'अहं' ही नष्ट हो गया तो ये सब कैसे रह सकते हैं ?

सच पूछो तो तुम्हारा होना ही ईश्वर से दूर होना है। तुम मिट गये तो ईश्वर ही रह जाता है।

इसीलिए कहा गया है :

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
प्रेमगली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं॥

'जब 'मैं' था अर्थात् 'अहं' था तब हरि नहीं थे। जब मैं न रहा तो केवल हरि ही रह गये। यह ईश्वरप्रेम की गली इतनी सँकरी है कि उसमें दोनों अर्थात् ईश्वर और अहं एक साथ नहीं समा सकते।'

जिसने ईश्वर तत्त्व को जान लिया, जिसका चित्त परमात्मा में लीन हो गया, जो योगयुक्त हो गया वह फिर समस्त बंधनों से, समस्त कामनाओं से, समस्त पकड़ों से निःस्पृह हो जाता है। उससे तुम पकड़वाला, संग्रहवाला काम नहीं करवा सकते हो।

अज्ञानी को खुश करना आसान है लेकिन उसकी सेवा करना कठिन है और ज्ञानी की सेवा करना सरल है किन्तु उन्हें प्रसन्न करना कठिन है क्योंकि ज्ञानी तन-मन-धन सब छोड़कर अगम पंथ में प्रवेश कर चुके होते हैं। कबीरजी ने कहा है :

अगमपंथ मन थिर करे, बुद्धि करे प्रवेश।
तन मन धन सब छाँडि के, तब पहुँचे वा देश॥

तन, मन, धन सब प्रकृति में हैं। प्रकृति के तन-मन की मान्यताएँ छोड़कर जब योगी अगम देश में पहुँच जाते हैं तब वे मुक्त हो जाते हैं। ऐसे मुक्त पुरुष को कौन बाँध सकता है ? ऐसे महापुरुष को तुम किसी मान्यता में, किसी परिस्थिति में, किसी समाज में, किसी पंथ में नहीं बाँध सकते। जिनके संकल्पमात्र से प्रकृति में उथल-पुथल मच जाती है उन्हें प्रकृति के साधनों द्वारा बाँध पाना कदापि संभव नहीं है।

ऐसे महापुरुष जब बोलते हैं तब उन्हें जितने लोग सुनते हैं, जिन पर उनकी नज़र पड़ती है, उतने लोगों के पाप नष्ट होने लगते हैं, उतने लोगों की दृष्टि पवित्र होने लगती है, कान पवित्र होने लगते हैं। लेकिन वे ज्ञानी यदि मौन में होते हैं, एकांत में रहते हैं तो उनकी वृत्ति ब्रह्माकार होती है और ब्रह्मलोक तक के जिज्ञासु जीवों को मदद मिलती है। जैसे, हिमालय में बर्फ गिरती है तो यहाँ (अमदावाद में) ठंडक आ जाती है, ऐसे ही जिसके चित्त में चैतन्य का प्रसाद आ गया वे यदि अपनी महिमा में मौन रहते हैं तो ब्रह्मलोक तक अपनी आत्मिक ठंडक पहुँचा सकते हैं।

मुझे ऐसे कई संतों की मित्रता मिली है जो कभी कहीं प्रवचन करने नहीं गये, किसीके घर नहीं गये। उनके चित्त को बहिर्मुख होने की रुचि बहुत कम होती है। लेकिन बाहर का समाज इतनी नीचे की स्थिति में है कि वह मौन की भाषा नहीं समझ सकता, उनके पवित्र आंदोलनों को नहीं झेल पाता इसलिए वे महापुरुष बाहर आना कभी-कभी ही स्वीकार करते हैं। यह जरूरी नहीं है कि मैं माइक पर प्रवचन करूँ तभी तुम्हें लाभ हो। तुम ज्यों-ज्यों ऊपर उठोगे त्यों-त्यों तुम्हें अनुभव होगा कि गुरुमंदिर की खिड़की बंद हो, माइक भी न हो और यह शरीर भी यहाँ न हो फिर भी तुम्हें बढ़िया प्रेरणा मिल रही है। ऐसा हो सकता है।

स्थूल शरीर से जितना काम होता है, उससे ज्यादा काम सूक्ष्म शरीर से होता है और जितना सूक्ष्म शरीर से होता है उससे अनंत गुना उस परमात्मप्रसाद से होता है।

नानकजी ने भी कहा है :

एको सुमरिये नानका जो जल थल ह्यो समाय।
क्यूँ जपिये सो नानका जो उपजे फिर मर जाय॥

यह शरीर तो उपजने और मरनेवाला है। स्वामी विवेकानंद भी बार-बार कहा करते थे कि : 'जो तुम्हें दिख रहा है वह मैं नहीं हूँ। मैं वह हूँ जो कभी नष्ट नहीं होता।' इस अविनाशी तत्त्व का अनुभव करके व्यक्ति समस्त स्पृहाओं से रहित हो जाता है।

जिनके चित्त से स्पृहा चली जाती है उनके

चित्त से नित्य नवीन आत्मरस उभरता है। जो धर्म व सात्विकता से प्रसन्नचित्त होता है, उसकी बुद्धि तीक्ष्ण हो जाती है। चिंतित, शोकातुर मनुष्य जो निर्णय लेगा वह अनुचित हो सकता है लेकिन सात्विक प्रसन्न मनुष्य जो निर्णय लेगा वह उचित होगा। इसीलिए पहले के जमाने में बड़े-बड़े राजा-महाराजा संत-महापुरुषों से सलाह लेते थे, मार्गदर्शन लेते थे फिर काम करते थे।

जीवमात्र आनंद चाहता है। श्रुति भी कहती है : **आनंदो ब्रह्म ब्रह्मेति परमात्मा।** आनंद ब्रह्म है और जो ब्रह्म को पा चुका है उसका स्वभाव आनंदित होता है, उसकी दृष्टि से, उसकी वाणी से आनंद बरसता है, उसके श्रीचरणों में बैठने से आनंद मिलता है।

इसीलिए कहा गया है : **नूरानी नज़र साँ दिलबर दरवेशन मुखे निहाल करे छडयो...** अपनी नूरानी निगाहों से दरवेश ने मुझे निहाल कर दिया...

जाने-अनजाने भी तुम बर्फ को स्पर्श करो तो ठंडा लगेगा, जाने-अनजाने भी मिश्री-शक्कर खाओ तो मीठी लगेगी। ऐसे ही सत्संग में, संतों के द्वार पर तुम कैसे भी जाओ, इच्छा से या अनिच्छा से, स्वार्थ से जाओ या जासूसी करने, लेकिन परमात्मा के प्यारों के बीच बैठोगे तो तुम्हारा मन निर्मल होने लगेगा, तुम्हारा चित्त प्रसन्न होने लगेगा, तुम्हारा हृदय आनंद से सराबोर होने लगेगा।

जेको जनम मरण ते डरे, साधजना की शरणी पड़े।
जेको अपना दुःख मिटावे साधजना की सेवा पावे॥

जो जन्म-मरण से डरता है उसे साधु पुरुषों की शरण में जाना चाहिए। जो अपना दुःख मिटाना चाहता है उसे साधु पुरुषों की सेवा करना चाहिए। साधु पुरुषों की सेवा क्या है ? सेवा यही है कि वे जो कहते हैं वह करो और साधु पुरुष यही कहते हैं कि तुम ईश्वर-चिंतन करो, राग-द्वेष से ऊपर उठो, अपने आत्मस्वरूप में डूबो।

एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा : ''स्वामीजी ! अमुक जगह पर मिल खरीदना है। आपकी आज्ञा हो तो मैं खरीद लूँ।''

मैंने कहा : ''नहीं।''

वह व्यक्ति दो-चार महीने के बाद आया और बोला : ''स्वामीजी ! जिस मिल के लिए आपने मना किया था वह मिल यदि हम लेते तो बेहाल हो जाते। उसमें तो बड़ी झंझटें हैं और वहाँ अब पुलिस का पहरा है।''

मैंने कहा : ''उधर से (भीतर से) 'ना' का जवाब आया तो मैंने 'ना' कह दिया था।''

फिर वह बोला : ''स्वामीजी ! अमुक जगह पर 'प्लॉट' है। खरीद लूँ ?'' मैंने उसी वक्त 'हाँ' कह दिया।

थोड़े दिन के बाद उसने आकर बताया :

''स्वामीजी ! जितने में लिया था उससे आठ गुनी कीमत में गया।''

मैंने कहा : ''उसने 'हाँ' कहलवा दिया तो 'हाँ' में भी अच्छा हुआ और 'ना' कहलवा दिया तो 'ना' में भी अच्छा हुआ।''

जिनको चित्त का प्रसाद मिल गया है उनको भीतर से जो प्रेरणा फुरती है, वह सही हो जाती है। मैं कोई टोने-टोटके नहीं जानता हूँ अथवा ध्यान करके नहीं देखता हूँ कि ऐसा होनेवाला है कि नहीं। जिसका चित्त निर्मल होता है उसको भीतर से ठीक प्रेरणा मिलती है।

जो व्यक्ति जितनी गहराई में जाता है उसमें उतनी ज्यादा नम्रता, सरलता, निःस्पृहता होती है और चित्त पर निःस्पृहता का बड़ा प्रभाव पड़ता है। निःस्पृहता का, सच्चाई का, प्रेम का अपना प्रभाव है। भले, थोड़ी देर के लिए अहंकारी स्वीकार नहीं करेगा, बल्कि विरोध करेगा लेकिन बाद में तो उसको भी स्वीकार करना पड़ता है।

अहंकार को जब छूट मिलती है तब वह अन्याय कर लेता है लेकिन अहंकार के ऊपर यदि महा अहंकार की लगाम है तो अहंकार भी कुछ-कुछ स्वीकार करता है।

अहंकार की अपनी सीमा होती है, व्यवहार की अपनी सीमा होती है। अहंकार, व्यवहार - यह सब चित्त में है, मन में है, अंतःकरण में है और मन की अपनी सीमा होती है, अंतःकरण की अपनी सीमा होती है।

कोई वकील है तो डॉक्टर नहीं है, कोई डॉक्टर है तो वकील नहीं है। कोई-कोई वकील और डॉक्टर दोनो है तो इंजीनियर नहीं है लेकिन उस एक चैतन्य की सत्ता से ही सब हो रहा है। व्यापारी का विषय इंजीनियर का नहीं है, इंजीनियर का विषय मज़दूर का नहीं है। इंजीनियर मज़दूरी नहीं कर सकता है, मज़दूर इंजीनियर का काम नहीं कर सकता है लेकिन वह चैतन्य दोनों कर सकता है। उसी एक चैतन्य आत्मस्वरूप में जो डूबता है, वह सब जान लेता है। इसीलिए संतों के द्वारा जो भी होता है वह सब यज्ञ ही यज्ञ है, सब मंगल ही मंगल है। संत वाणी कहती है :

ब्रह्मज्ञानी ते कछु बुरा न भया।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं :

नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं,
करहु विचार सुजन मन माहीं ॥

भगवन्नाम में जिसकी निष्ठा हो गई उसके लिए संसार में कुछ अन्य काम बाकी न रहा।

भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।

श्रद्धा साक्षात् भवानी स्वरूप है और विश्वास साक्षात् शंकरस्वरूप है। जिसका भगवान् में दृढ़ विश्वास और निष्ठा है उसे केवल नाम जपसे भगवान् के दर्शन भी हो सकते हैं। भगवन्नाम से भगवान् अलग नहीं हैं। नाम के अंदर भगवान् हैं।

* आप जितना अधिक जप करेंगे उतनी ही शीघ्रता से सफलता की ओर बढ़ेंगे। बस, भगवन्नाम जप की रट लगा दो।

कलियुग करम न धरम विवेकू,
रामनाम अवलंबन एकू।

कलियुग सब युगों से खराब है फिर भी देवताओं ने इस युग में जन्म प्राप्त करने के लिए भगवान् से प्रार्थना की है क्योंकि इस युग में केवल भगवन्नाम जप से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है।
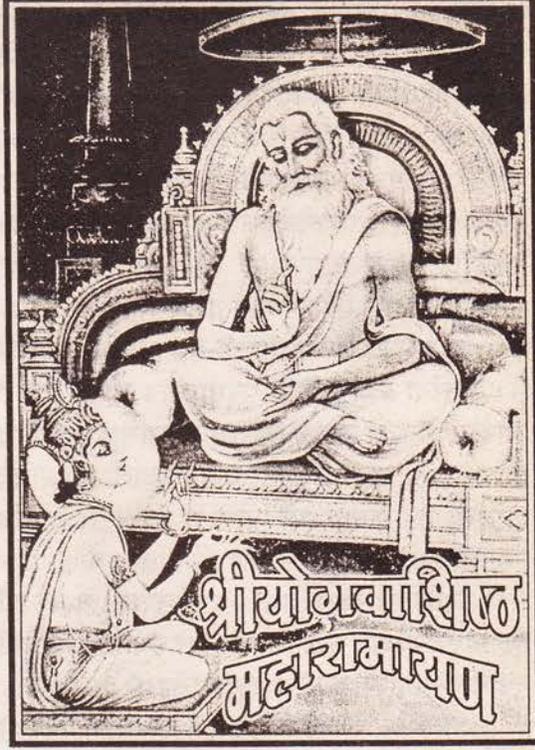
अब तो जाग जा, भैया !

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में श्री वशिष्ठजी महाराज कहते हैं :

'हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र में जब विवेकरूपी नौका अकस्मात् प्राप्त होती है तब जीव संसार-समुद्र से पार हो जाता है। जीव प्रमाद से ही जड़ता को प्राप्त हुआ है। जैसे, जल शीतलता से ओला कहलाता है, वैसे ही प्रमाद से आत्मा जीवसंज्ञा पाता है।

यह विचार करना चाहिए कि : 'मैं कौन हूँ ? यह जगत क्या है ?' इस प्रकार संतों और सत्शास्त्र के विचार का निर्णय करने से सत्य-असत्य का विवेक हो जाता है।'

जो जगत के पदार्थों को भोगकर सुखी रहना चाहता है, निश्चिंत रहना चाहता है वह महामूर्ख है। जगत में से सुख खोजना ही दुःख को बुलाना है। सुख वृत्ति सापेक्ष है। जैसी वृत्ति होगी वैसा ही

सुख मिलेगा। 'यह सुख है...' ऐसी भावना से ही सुख दिखता है। दुःख की वृत्ति से दुःख दिखता है। ऐसी कई वृत्तियाँ आती हैं... जाती हैं और वृत्तियों के अनुसार सुख आता है... जाता है लेकिन वृत्तियाँ जहाँ से उठती हैं उस परमात्मा में टिक जायें तो परम आनंद है, परम शांति है। परम पुरुषार्थ है परमात्मा में टिकना।

मानव का कैसा दुर्भाग्य है कि आत्मा सदा आनंदस्वरूप है पर उसको दुःखी मानता है! आत्मा शांतस्वरूप है पर उसको अशांतस्वरूप मानता है! आत्मा महत् है पर उसको लघु मानता है! आत्मा ज्ञानस्वरूप है लेकिन उसको नहीं जानता है! परमात्मा अपना है, अपने साथ है लेकिन उसे पराया मानता है! आत्मा समस्त विकारों से रहित है पर उसको विकारी मानता है! आत्मा निराकार है पर उसको साकार मानता है! वह हाजरा-हजूर है, अपना आपा है, लेकिन उसे भविष्य में और दूर मानता है!

आत्मा परम शुद्ध है। वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, स्थूल-से-स्थूल, बड़े-से-बड़ा, लघु-से-लघु और सब शब्दों एवं उनके अर्थों का अधिष्ठान है। भगवान बड़े-से-बड़े एवं छोटे-से-छोटे हैं। छोटे ऐसे हैं कि चींटी के अंदर भी वह चैतन्य और ज्ञानस्वरूप विराजता है। चींटी को भी ज्ञान है कि : 'यह शक्कर है... यह गुड़ है... यह नमक है... मौसम बदल रहा है...' और बड़े-से-बड़े इसलिए कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी भगवान के अंदर हैं। आप, हम, सब भगवान के अंदर हैं। 'वे ही भगवान हमारे हृदय में हैं तो हम बड़े हुए कि भगवान बड़े हुए ?' यह प्रश्न उठ सकता है। जैसे लड्डू गिलास में है तो गिलास बड़ा कि लड्डू बड़ा ? गिलास बड़ा। ऐसे ही भगवान हमारे हृदय में हैं तो हम बड़े कि भगवान बड़े ? हम बड़े ? नहीं, हम में भगवान हैं फिर भी भगवान बड़े हैं क्योंकि भगवान केवल हम में हैं ऐसी बात नहीं है। भगवान सबमें हैं इसलिए भगवान बड़े हैं। जैसे, **घड़े में आकाश है तो घड़ा बड़ा हुआ, फिर भी आकाश बड़ा है क्योंकि सब घड़े आकाश में हैं। ऐसे ही सबके अंदर भगवान हैं और भगवान के अंदर सब हैं** तो भगवान बड़े हुए। ऐसे वास्तविक सिद्धांत से ज्ञान होता है।

भगवान बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे भी हैं। भगवान से ज्यादा छोटा कोई नहीं है। बैक्टीरिया में भी भगवान की चेतना है।

'बैक्टीरिया को तो मारना है... तो क्या भगवान भी मर जायेंगे ?'

नहीं, बैक्टीरिया मरता है लेकिन बैक्टीरिया के अंदर विद्यमान भगवान कभी नहीं मरते। जैसे, घड़ा टूटता-फूटता, नष्ट होता है लेकिन घड़े के अन्दर का आकाश नष्ट नहीं होता है, ऐसे ही शरीर के मरने से भगवान भी नहीं मरते हैं।

भगवान छोटे-से-छोटे ऐसे हैं कि दुनिया में सबसे छोटी चीज, 'माइक्रो' का लाखवाँ हिस्सा... उससे भी भगवान छोटे हैं और सारी दुनिया तो क्या अनंत-अनंत ब्रह्माण्ड भी भगवान के आगे कुछ नहीं हैं, भगवान इतने बड़े हैं। वे ही भगवान तुम्हारा अपना-आपा, आत्मस्वरूप होकर बैठे हैं... उस ज्ञान में मन-बुद्धि पवित्र, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम हो जाये, बस। संसार सपना है, ब्रह्म-परमात्मा अपना है... इसको जानकर मुक्त हो जाओ।

इस आत्मज्ञान को पाने के लिए ही मनुष्य जन्म मिला है। बाद में क्या पता, मरकर कौन-सी माता की कोख में जाते हो... कौन-सा शरीर मिलता है... कोई पता नहीं है इसलिए अभी से अपने कल्याण में लग जाओ। आज का लाभ ले लो। शरीर की थोड़ी सुविधा-असुविधा सहकर भी आत्मज्ञान पा लेना चाहिए।

मन ! तू ज्योतिस्वरूप, अपना मूल पिछान।

मनुष्य जन्म मिला, बुद्धि मिली, श्रद्धा मिली और बड़े-में-बड़ी बात यह कि ब्रह्मज्ञानी गुरु मिले। गीता-उपनिषद और वेदान्त शास्त्र मिला। आत्म अनुभवी परमात्म साक्षात्कारी संत मिले। फिर भी ज्ञान नहीं पाते और समय गँवा देते हैं तो बना-बनाया खेल चौपट हो जायेगा। चेत जा रे, भैया ! अभी-भी वक्त है।

चौरासी लाख योनियों के बाद मुक्ति का द्वार

मनुष्य शरीर मिलता है और वह भी भारत में मिला ! एक तो भारत में मनुष्य जन्म, उत्तम बुद्धि, फिर श्रद्धा...

कइयों के पास बुद्धि है तो श्रद्धा नहीं है, श्रद्धा है तो बुद्धि नहीं है। किसीके पास बुद्धि भी है, श्रद्धा भी है तो पैसा नहीं है, कमाने में समय देना पड़ता है, समय नहीं मिलता है।

जिसके पास पैसा भी है, बुद्धि भी है, श्रद्धा भी है और समय भी मिलता है, ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु भी हैं फिर क्यों देर करना ? फिर भगवान को क्यों नहीं पा लेना ? बेटे-बेटियों को २०-२२ साल तक सँभाला, कमाना सिखा दिया फिर क्यों चिंता करना ? ५० साल के बाद परमात्मा को पाने के लिए एकान्त में, वन में जाना चाहिए- ऐसा शास्त्र कहते हैं। किन्तु बुद्धि शुद्ध हो और यदि युवावस्था में भी विवेक-वैराग्य जग जाये तो भगवान के लिए सब छोड़कर लग जाना चाहिए। भगवान को पाने के लिए, सच्चे सुख को पाने के लिए ही तो तुम्हारा जन्म हुआ है।

भगवान कहते हैं : 'तुम आत्मा को पा लो, मुक्त हो जाओ। कब तक बंधन में पड़े रहोगे ? कितने ही जन्मों से सब करते आये हो फिर भी क्या मिला ? अब जिससे किया जाता है उसको पाने की कोशिश करो, सब ठीक हो जायेगा।'

जो परमात्मज्ञान का आश्रय लेता है उसको आत्मपद की प्राप्ति होती है, सब सुखों की चरम सीमा प्राप्त होती है। इन्द्र आदि को भी वह सुख नहीं मिलता, जो सुख ज्ञानवान् के हृदय में प्रगट होता है। सुखस्वरूप को छूकर ज्ञानवान् जो बोलते हैं उससे लोगों को भी आनंद मिलता है और सब उनके पीछे-पीछे घूमते हैं। ईश्वर ज्ञानस्वरूप है, पुण्यों का पुंज है। उसमें आप जितना रहेंगे उतना ही आपसे लोगों को लाभ होगा। लोगों से आप उद्विग्न नहीं होंगे। जीवात्मा जब तक आत्मसागर में निमग्न नहीं होता तभी तक उसको चिंता, भय आदि सताते हैं। आत्मा-परमात्मा में मिल गया तो डर किसका ? चिंता किस बात की ?

सत्कर्म भी करें तो भगवान के लिए, आत्मज्ञान के लिए करें, भोग के लिए नहीं। भोग भोगकर भी एक दिन शरीर मरेगा ही। यह संसार है। बैल बूढ़ा होता है तो कसाईखाने में जाता है, मुरझाया फूल फेंक दिया जाता है। ऐसे ही वृद्धावस्था में शरीर लाचार होता है। हमको कोई पूछे नहीं और अपना मुँह मोड़ ले उससे पहले ही हम अपना मन ईश्वर की ओर मोड़ दें... इसीमें हमारा भला है। शरीर के मर जाने पर लोग जला आयेंगे, बेटे हड्डियाँ तक घर में नहीं रखेंगे। शरीर जल जाये उससे पहले हम अपनी वासनाएँ जला दें तो कितना अच्छा होगा !

संसार में सब मतलब के हैं, केवल ईश्वर एवं ईश्वर-प्राप्त महापुरुषों को छोड़कर। भगवान एवं सद्गुरु बुलाते हैं तो कुछ देने के लिए, बाकी जो बुलाते हैं, प्रेम करते हैं आपसे कुछ लेने के लिए। भगवान और सद्गुरु आपको ऐसी चीज़ देना चाहते हैं कि आप मुक्त हो जायें... परम सुख को प्राप्त हो जायें... सदा-सदा के लिए संसार-दुःखों से दूर हो जायें।

भगवान और सद्गुरु की आज्ञा मानने में भला है और दूसरों से सावधान रहने में भला है।

भोले बाबा ने ठीक ही कहा है :

सगे-संबंधी स्वार्थ के हैं, स्वार्थ का संसार है।
निःस्वार्थ सद्गुरुदेव हैं, सच्चे वही हितकार हैं॥
ईश्वरकृपा होवे तभी, सद्गुरुकृपा जब होय है।
सद्गुरुकृपा बिन ईश भी, नहिं मैल मन की धोय है॥
सद्गुरु जिसे मिल जाय सो ही, धन्य है जगमन्य है।
सुर सिद्ध उसको पूजते, ता सम न कोऊ अन्य है॥
अधिकारि हो गुरुदेव से, उपदेश जो नर पाय है।
'भोला' तरे संसार से, नहिं गर्भ में फिर आय है॥

जैसे लोहे से लोहा कटता है, काँटे से काँटा निकलता है उसी प्रकार शुभ कर्मों से कर्मों का उच्छेद होता है। कर्म से आत्मज्ञान नहीं होता लेकिन सदियों से इकट्ठे हुए कर्ममल को हटाने के लिए शुभ कर्म, निष्काम कर्म अत्यंत आवश्यक है। तभी आत्मज्ञान के लिए भूमिका बनती है।

(आश्रम की पुस्तक 'ऋषि प्रसाद' से)

नकारात्मक चिंतन से बचें

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

विपरीत और नकारात्मक विचारवाले लोग ऐसे अभागे होते हैं कि खुद तो डूब मरते हैं और दूसरों को भी डुबा देते हैं। ऐसे नकारात्मक विचारवालों का संग बड़ा दुःखदायी होता है। नकारात्मक विचारवाले मित्र से तो स्वीकारात्मक विचारवाले शत्रु का संग भी अच्छा है। 'बेवकूफ दोस्त से दाना दुश्मन भला...' बेवकूफ मित्र से उदार स्वीकारात्मक विचारवाला शत्रु भला।

शल्य दुर्योधन एवं कर्ण की हार का कारण बना था- सभी जानते हैं। शल्य ऐसे चुभनेवाले नकारात्मक वचन बोलता था कि वीर कर्ण तक को हरवा दिया। हालाँकि संसार में हारना यह कोई बड़ी बात नहीं है लेकिन भगवान के रास्ते से हारकर पीठ दिखाना- इससे बड़ा दुर्भाग्य मानव का और कोई नहीं हो सकता।

ईश्वर के रास्ते पर नकारात्मक विचार करके जो फिसलते हैं उनसे तो दुश्मन अच्छा। ईश्वर के रास्ते जाने से जो आपको टोकते हैं, रोकते हैं वे तो अच्छे हैं क्योंकि वे आपको और भी दृढ़ एवं मजबूत बना देते हैं लेकिन जो स्वयं फिसलते हैं वे औरों को भी फिसला देते हैं।

आप ध्यान-भजन करते हैं और आपको कोई टोकता-रोकता है तो आपका बल बढ़ता है लेकिन जो ईश्वर के रास्ते चलकर फिर फिसलते हैं वे तो औरों की श्रद्धा को भी डगमगा देते हैं। कबीरजी ने कहा है :

कबिरा निंदक ना मिले, पापी मिले हजार।
एक निंदक के माथे पर, लाख पापिन को भार॥

निंदकों से पापी अच्छे हैं, जो भगवान की, शास्त्र की, सद्गुरु की निंदा करते हैं, नकारात्मक सोचते हैं उनसे तो पापियों का संग अच्छा है। पता तो चलेगा कि : 'यह पापी है।' निंदक तो अपना बनाकर, फिर हमारे अंदर भी नकारात्मक विचार (Negative Thinking) और हमारे हृदय में अपनी मीठी बातों से अश्रद्धा का विष डालकर हमारा सत्यानाश कर देता है। जैसे, मंथरा कैकेयी की दासी थी। उसने कैकेयी में ऐसे संस्कार भर दिये कि कैकेयी अभी-भी लानत का पात्र बनी हुई है।

ऐसे नकारात्मक विचारवाले लोग मंथरा से भी गये-बीते हैं। मंथरा ने तो श्रीराम को वनवास भिजवाया था, अयोध्या में खलबली मचा दी थी और स्वयं अपनी ही जगह पर रही थी। लेकिन नकारात्मक विचारवाले खुद भी संसार के दलदल में जा गिरते हैं और दूसरों को भी संसार के दलदल में गिरा देते हैं। फिर सोचते हैं कि : 'क्या हमको भगवान मिल सकते हैं ? बड़ा कठिन है। साधना से कुछ नहीं हुआ। क्या करें ? चलो, संसार में ही पढ़ें-लिखें, नौकरी-धंधा करें।' इसको कहते हैं 'कर्मलेढ़ी'। हाथ में मक्खन का पिण्ड आया है, उसे छोड़कर छाछ चाट रहे हैं।

नकारात्मक विचारवाले स्वयं अपने जीवन में दुःख को आमंत्रण दे देते हैं। ऐसे ही असंतोषी विचारवाले भी अपने जीवन को दुःखी बना देते हैं। जिसके जीवन में नकारात्मक विचार होते हैं, फरियादात्मक विचार होते हैं वह भूतकाल को याद करके दुःखी रहता है, वर्तमान का अनादर करता है और भविष्य के लिए व्यर्थ की भागदौड़ करता है।

जैसे कोई बच्चा, किशोरावस्था में आया, थोड़ी-सी मूँछें आयीं तो कभी-कभी कालिमा लगाकर भी मूँछें बना लेता है। कई लड़के तो जल्दी मूँछें आयें इसी चक्कर में होते हैं। फिर थोड़ी मूँछें आयें तो आहाहा...

...लेकिन जब मूँछें नहीं हैं तो मूँछों के लिए बेवकूफी क्यों ? ...और मूँछें आ गयीं, बड़े हो गये फिर पूछो कि : 'क्या हाल हैं ?' तो कहेंगे कि : 'अरे ! बचपन में बड़े मजे थे।' उस समय तो बड़ा होना चाहता था और जब बड़ा हुआ तो बचपन को याद करने लगा !

दो मित्र थे। दोनों पढ़े-लिखे थे लेकिन एक था सदा संतोषी और दूसरा था सदा असंतोषी। दोनों बड़े हुए। एक रेलवे का ड्राइवर बना और दूसरा दुकान का मालिक बना। दुकान का मालिक तो बना लेकिन उस मूर्ख को सदा फरियाद करने की आदत थी। वह अपने मित्र से बोला :

''यार ! क्या जिंदगी है ? सुबह जल्दी-जल्दी दुकान पर जाना, शाम को थककर आना... सामान लाना... मँगवाना... ये सब झंझटें हैं।''

फिर थोड़ी देर रुककर बोला : ''परन्तु तू तो मुझसे भी ज्यादा दुःखी है।''

ड्राइवर मित्र : ''कैसे ?''

दुकानवाला मित्र : ''काले-काले भूत जैसे रेलवे-इंजन में बैठे रहना, गरमी सहना, कभी इधर तो कभी उधर... तेरी तो यार ! जिंदगी व्यर्थ है।''

ड्राइवर मित्र संतोषी था, स्वीकारात्मक विचारोंवाला था वह बोला : ''नहीं। नहीं, मित्र ! जिसका सोचने का ढंग गलत है उसकी जिंदगी व्यर्थ है। जिसके पास सोचने का ढंग सही है उसीकी जिंदगी सार्थक है।

देख, मैं अमदावाद से दिल्ली मेल ले जाता हूँ। गर्मी होती है तो दरवाजे में खड़े रहकर खुली हवा, बिना पंखे की मुफ्त की हवा खाता हूँ। सर्दी होती है तो बॉयलर के निकट खड़ा रहता हूँ। लोग पैसा देकर टिकट खरीदते हैं और हम मुफ्त में घूमते हैं, ऊपर से वेतन मिलता है वह अलग। हमारे जैसा सुखी कौन ?''

ड्राइवर ने सुख माना और दुकानदार छाती कूटता है कि : 'हाय ! रोज सुबह दुकान पर मरना पड़ता है, बही-खाते लिखने पड़ते हैं...'

ऐसा करते-करते दैवयोग से, तरतीव्र प्रारब्ध से उस ड्राइवर का पटरियाँ पार करते-करते गलती से 'एक्सीडेंट' हो गया। टाँग कट गयी। अस्पताल में उसका इलाज हो रहा था। बैसाखियाँ लेकर चलता था। उस समय उस दुकानदार मित्र ने आकर कहा :

''अरे मित्र ! क्या तेरी जिंदगी है ! पैर कट गया... मैं तो पहले ही बोलता था कि तेरी यह जिंदगी बड़ी दुःखद है।''

ड्राइवर मित्र : ''काहे का दुःख ? पागल कहीं के ! मेरे जैसा सुखी तुझे कोई नहीं मिलेगा। मैं इतने दिन से यहाँ हूँ तो भोजन तैयार मिलता है, सेवा मिलती है, वेतन भी चालू है। पहले रविवार को घर जाता था तो आटा पिसाने जाना पड़ता था, अब उससे छुट्टी मिल गयी। एक पैर हो गया। पहले दोनों पैरों में जूते पहनने पड़ते थे, अब एक से ही काम चल जाता है।''

दुकानदार मित्र तो देखता ही रह गया ! ड्राइवर मित्र के पास सोचने का सही ढंग था, स्वीकारात्मक विचार थे तो उसने दुःखद संयोग में भी सुख बना लिया।

कृपानाथ ! आप भी सोचने का ढंग सही रखें। सोचने का ढंग अगर गलत होगा तो तबाह हो जायेंगे। सोचने का ढंग अगर सही होगा तो महान् से महान् हो जायेंगे, शाद-आबाद हो जायेंगे। आप भी नकारात्मक, फरियादात्मक विचार करके दुःखी मत बनिये और सुख की आसक्ति करके, सांसारिक विषयों में सुखबुद्धि करके सुख के भोक्ता भी मत बनिये वरन् स्वीकारात्मक एवं ऊँचे विचार करके ईश्वर के मार्ग पर अग्रसर होते रहिये, इसीमें आपका कल्याण निहित है।

गुरुमुख होकर सोचें, शास्त्र की दृष्टि से सोचें, मनमुख होकर नहीं, नकारात्मक या फरियादात्मक होकर नहीं। यदि आपका सोचने का ढंग ऊँचा होगा तो आप महान् हो जायेंगे और यदि सोचने का ढंग तुच्छ रहा, नकारात्मक, फरियादात्मक अथवा विषय-विलासवाला रहा तो ब्रह्माजी भी आपका भला नहीं कर सकते। अतः सावधान !

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं :

''हे रामजी ! वही जीव है जो सोचने का ढं

ऊँचा रखता है तो सहस्रनेत्रधारी इन्द्र होकर पूजा जाता है और वही जीव यदि सोचने का ढंग गलत रखता है तो सर्प होकर, बिच्छू होकर, कीड़ा-मकोड़ा होकर जमीन पर रेंगता है। किसी समय ये कीड़े-मकोड़े भी मनुष्य थे और किसी समय इन्द्र भी मनुष्य था। सोचने का ढंग ऊँचा था, पुरुषार्थ था, संयम था, यज्ञ-यागादि किये थे तो इन्द्रासन पर बैठा।

यदि उससे भी ऊँचा सोचने का ढंग होता तो जिसके आगे इन्द्रपद भी तुच्छ भासता है ऐसा ब्रह्मज्ञानी हो जाता।

जिनका सोचने का ढंग हलका रहा, 'जो आया सो खाया-पिया-भोगा...' वे ही धीरे-धीरे गिरते-गिरते नीच योनियों में रेंग रहे हैं।''

जो मंजिल चलते हैं, वे शिकवा नहीं किया करते।
जो शिकवा करते हैं, वे कमबख्त पहुँचा नहीं करते॥

क्षौर के शास्त्रीय नियम

अपने कल्याण के इच्छुक व्यक्ति को बुधवार व शुक्रवार के अतिरिक्त अन्य दिनों में बाल नहीं कटवाना चाहिये।

सोमवार को बाल कटवाने से शिवभक्ति की हानि होती है। पुत्रवान को इस दिन बाल नहीं कटवाना चाहिये। मंगलवार को बाल कटाना सर्वथा अनुपयुक्त है, मृत्यु का कारण भी हो सकता है। बुधवार धन की प्राप्ति करानेवाला है।

गुरुवार को बाल कटवाने से लक्ष्मी और मान की हानि होती है। शुक्रवार लाभ और यश की प्राप्ति करानेवाला है। शनिवार मृत्यु का कारण होता है। रविवार तो सूर्यदेव का दिन है इस दिन क्षौर कराने से धन, बुद्धि और धर्म की क्षति होती है।

('उड़िया बाबा के उपदेश' से संकलित)

सफलता का विज्ञान

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

विदेश में किसी व्यक्ति ने सुना कि फलानी जगह पर खोदने से सोना निकलेगा। उसने वह जमीन खरीद ली और खुदवाना शुरू किया। खोदने के कार्य में उसके लाखों रुपये खर्च हो गये किन्तु कुछ मिला नहीं। वह अत्यंत निराश हो गया, तब उसके किसी मित्र ने कहा :

''इतना तो खुदवा ही दिया है। अब हो सकता है कि दो-पाँच फुट और खोदने पर सोना मिल जाये।''

वह व्यक्ति बोला : ''जब इतना-इतना खोदा फिर भी सोना नहीं मिला तो पाँच फुट और खुदवाने पर कैसे मिलेगा ? मेरा भाग्य ही ऐसा है।''

अपने भाग्य को दोष देते हुए उसने उस खदान को अत्यंत कम मूल्य पर बेच दिया। दूसरे व्यक्ति ने खरीदकर उसे फिर से खुदवाना शुरू किया। पाँच-छः फुट और खुदवाने पर ही उसे खूब सोना मिला। तब बेचनेवाले ने कहा :

''क्या करें ? उसका भाग्य अच्छा था इसलिए उसे मिल गया। मेरा तो भाग्य ही फूटा हुआ है।''

वास्तव में पहले का भाग्य फूटा हुआ और दूसरे का अच्छा था, ऐसी बात नहीं है। पहलेवाले ने धैर्य और श्रद्धा खो दी जबकि दूसरे का धैर्य और श्रद्धा ज्यादा थी इसलिए उसे सोना मिल गया।

विफल वे ही लोग होते हैं जो लापरवाह होते हैं, निराशावादी होते हैं। जिस कार्य के लिए जितना धैर्य, जितनी तत्परता व समझ होनी चाहिए उसकी

कमी के कारण लोग निराश होते हैं और असफल हो जाते हैं। उसी काम को दूसरा व्यक्ति उत्साह, धैर्य और तत्परता से करता है तो सफल हो जाता है।

परिस्थितियाँ मनुष्य को नहीं बनातीं, मनुष्य परिस्थितियों को बनाता है। भाग्य मनुष्य को नहीं बनाता, मनुष्य अपने भाग्य को बनाता है।

एक बार तक्षशिला को शत्रुओं ने घेर लिया। सेनापति ने आकर राजा से कहा : ''शत्रु का सैन्यबल, राज्यबल हम से अधिक है। युद्ध में हम हार जायेंगे। अतः अच्छा यही है कि हम शरणागत हो जायें। दूसरा कोई उपाय नहीं है।''

तक्षशिला के नरेश को वह बात ठीक भी लग रही थी। इतने में एक महात्मा आ गये और बोले :

''तुम्हारा यह सेनापति तुम्हारी श्रद्धा और मनोबल तोड़ रहा है। इसे अभी-अभी सेनापति पद से हटा दो और सेनापति का पद मुझे दे दो। मैं तुम्हारी सेना लेकर जाऊँगा और जरूर विजयी होकर आऊँगा।''

पहले तो राजा हिचकिचाया लेकिन बाद में उसे हुआ कि इन महात्मा की वाणी में विश्वास और गहराई है। अतः उसने निराशाजनक विचार करनेवाले सेनापति की बात को ठुकराकर महात्मा को सेनापति का पद प्रदान कर दिया।

महात्मा सेना को लेकर आगे बढ़े। शत्रुपक्ष की सेना और तक्षशिला की सेना के बीच देवी का एक मंदिर था। महात्मा ने सेना को वहीं रोककर सैनिकों से कहा :

''देखो, अगर देवी माँ 'हाँ' कहेंगी तो हमारी विजय निश्चित है। मैं यह सिक्का उछालता हूँ। अगर सीधा पड़ा तो विजय हमारी होगी और अगर उल्टा पड़ा तो हम उल्टे पैर वापस लौट चलेंगे।''

यह कहकर महात्मा ने अपनी जेब से सिक्का निकाला और आसमान में उछाला। सिक्का धरती पर सीधा गिरा। महात्मा ने पुनः कहा : ''देखो देखो, सिक्का सीधा पड़ा है। हमारी विजय निश्चित है। भले ही शत्रु संख्या में ज्यादा हैं लेकिन माँ ने स्वीकृति प्रदान कर दी है। अतः विजय हमारी ही होगी।''

इस प्रकार महात्मा ने तीन बार सिक्का उछाला और तीनों बार सिक्का सीधा पड़ा। इससे सैनिकों के मनोबल में दृढ़ता व श्रद्धा का संचार हो गया और वे पूरे जोश के साथ युद्ध में कूद पड़े। देखते-ही-देखते वे शत्रुपक्ष की विशाल सेना पर इस तरह हावी हो गये मानों, हाथियों के झुंड पर सिंह। थोड़े ही समय में शत्रु सेना के पैर उखड़ने लगे एवं तक्षशिला की जीत हो गयी।

प्रसन्नता से सैनिक कह उठे : ''देवी माँ की जय... देवी माता ने ही हमें विजय दिलायी है।''

महात्मा ने रहस्योद्घाटन करते हुए कहा :

''विजय देवी माता ने तो क्या, तुम्हारे विश्वास और उत्साह ने ही दिलवायी है। तुममें विश्वास जगाने के लिए ही मैंने यह प्रयोग किया था कि सिक्का सीधा पड़ेगा तो विजय हमारी होगी। वास्तव में सिक्का दोनों तरफ से सीधा-ही-सीधा था। ऐसा सिक्का तुम्हारे श्रद्धा-विश्वास को बढ़ाने के लिए मैंने बनवाया था। यह देखो वही सिक्का दोनों तरफ से सीधा है। विजय तो तुम्हारे विश्वास की हुई है।''

जिसका उत्साह और विश्वास मरता है वह मरता है। जिसमें विश्वास और उत्साह तीव्र होता है वह विलक्षण सफलता प्राप्त करता है। अतः कैसी भी विकट परिस्थिति हो, अपना धैर्य, श्रद्धा, विश्वास एवं उत्साह नहीं खोना चाहिए वरन् बुद्धिपूर्वक विश्लेषण करके लगे रहना चाहिए, डटे रहना चाहिए। मुसीबतों का सामना अटल एवं अडिग होकर करो। विजय तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही है।

साधना-मार्ग में पतन होना यह पाप नहीं है लेकिन पतन होने के बाद पड़े ही रहना, उठना नहीं, यह पाप है। पतन और असफलता से डरो नहीं। साधना के मार्ग पर हजार बार निष्फलता मिले फिर भी रुको मत। पीछे न मुड़ो। निर्भयतापूर्वक साहस जारी रखो। तुम अवश्य सफल हो जाओगे।

(आश्रम की पुस्तक 'ऋषि प्रसाद' से)

शब्द की चोट

शब्दों का बड़ा भारी असर होता है। दिन-रात अज्ञानता के शब्द सुनते रहने से अज्ञान दृढ़ हो जाता है, विकारों के शब्द सुनते रहने से मन विकारी बन जाता है, निंदा के शब्द सुनते रहने से चित्त संशयवाला बन जाता है, प्रशंसा के शब्द सुनते रहने से चित्त में अहंभाव आ जाता है। परमात्मस्वरूप के शब्द सुनकर चित्त देर-सबेर आत्मा-परमात्मा में भी जाग जाता है।

'अंधे की औलाद अंधी...' द्रौपदी के इन शब्दों ने ही महाभारत का युद्ध करवा दिया। ये शब्द ही दुर्योधन को चुभ गये और समय पाकर भरी सभा में द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रयास इन्हीं शब्दों ने करवाया।

हाड़-मांस की देह मम, वा में इतनी प्रीति।
या ते आधी जो राम प्रति, अवश मिटे भव भीति॥

रत्नावली के इन्हीं शब्दों ने अपने पति को संत तुलसीदास बना दिया।

ध्रुव को अपनी सौतेली माँ के शब्द लग गये और वह चल पड़ा तो अटल पदवी पाने में समर्थ हो गया, महान् हो गया।

ऋषभदेव मुनि के शब्दों ने सम्राट भरत को योगी भरत बना दिया :

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्॥

'जो अपने प्रिय संबंधी को भगवद्भक्ति का उपदेश देकर मृत्यु की फाँसी से नहीं छुड़ाता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है।' (श्रीमद्भागवत : ५.५.१८)

अजनाबखंड के एकछत्र सम्राट भरत जिनके नाम से हमारे देश का नाम 'भारत' पड़ा, अपने पिता के इन दो शब्दों को याद रखते हुए चल पड़े तो योगी भरत बन गये।

एक बार ऋषभदेव मुनि यात्रा करते-करते अयोध्या पहुँचे। वहाँ पंडितों-साधुओं ने उनका खूब सम्मान किया क्योंकि वे राजा होने के साथ-साथ महाराज भी थे। भोग के सम्राट अब योग के सम्राट थे। किसीने कहा कि :

''जैसे, ऋषभदेव मुक्तात्मा हैं वैसे ही उनके सपूत भी मुक्तात्मा बनेंगे।''

तब दूसरे ने कहा : ''यह कैसे हो सकता है ? वे तो पूरे अजनाबखंड के राजा बने बैठे हैं। उनके जीवन में त्याग, तपस्या, एकांत, मौन, ध्यान-साधना आदि कहाँ है ? तुम कैसी बातें कर रहे हो ?''

अयोध्या के पंडितों में वाद-विवाद चल पड़ा। दो पक्ष हो गये। एक पक्ष कहने लगा कि : ''हाँ, वे योग के सम्राट बन सकते हैं क्योंकि विचारवान् हैं।'' जबकि दूसरा दल कहने लगा कि : ''यह कैसे हो सकता है ? वे तो राज्य के दलदल में पड़े हैं।''

बात ऋषभदेवजी के पास पहुँची, तब उन्होंने कहा : ''हाँ, भरत मुक्तात्मा होगा। मेरा पुत्र है इसलिए नहीं कहता हूँ।''

तब पंडितों ने निवेदन किया कि : ''आपके पुत्र हैं इसलिए नहीं, फिर भी वे मुक्तात्मा होंगे, इसका क्या कारण है ?''

तब ऋषभदेवजी बोले : ''भरत के अन्दर विवेक है। उसने पुरोहितों से कह रखा है कि 'तुम लोग राजाधिराज महाराज ! आपकी जय हो...' ऐसा मत बोला करो। आप मेरा हित चाहते हो तो केवल इन्हीं दो शब्दों से मेरा अभिवादन करो : '**वर्धते भयं... वर्धते भयं...** भय बढ़ रहा है... भय बढ़ रहा है...' यही मुझे सुनाया करो। अर्थात् ज्यों-ज्यों दिन बीत रहे हैं, त्यों-त्यों मौत के दिन नजदीक

आ रहे हैं। इतना आप कहा करो।

इस प्रकार का विवेक है भरत के पास, इसलिए वह संसार के दलदल में नहीं फँसेगा। मौत आकर गला दबोचे उसके पहले भरत अमरता की तरफ चल पड़ेगा।''

हुआ भी ऐसा ही। सम्राट भरत आगे चलकर योगी भरत हो गये।

आप भी अपने घर की दीवार पर ये शब्द लिख दो : 'आखिर कब तक ?'

'इतना मिला... इतना पाया... फिर क्या ? आखिर कब तक ?'

पंडित जवाहरलाल नेहरू और उनकी बेटी श्रीमती इंदिरा गाँधी जिनके चरणों में मस्तक नवाते थे, उन आनंदमयी माँ को सत्संग सुनाने की योग्यता खेत की रखवाली करनेवाले शांतनु में कैसे आ गयी ?

शांतनु के पिता पुरोहिती का कार्य करते थे और थोड़ी-बहुत खेती-बाड़ी भी करते थे। दिन में उनके पिता और दादा खेत की रखवाली करते और शाम को वे स्वयं चक्कर लगाते।

खेत में रोज एक बकरा घुस जाता। वह इतना मजबूत और कुशल था कि खेत बिगाड़कर चला जाता और हाथ में नहीं आता था। एक दिन सात-साल का शांतनु सुबह-सुबह हाथ में चाकू लेकर यह सोचकर खेत में कहीं छुप गया कि : 'यह बकरे का बच्चा मेरा खेत खा जाता है। आज इसका पेट फाड़ डालूँगा।'

इतने में उसी गाँव का एक पंडित वहाँ से गुजरा। उसकी नज़र शांतनु पर पड़ी तो पूछा :

''हे ब्राह्मणपुत्र शांतनु ! इस प्रकार छुपकर क्यों बैठे हो ? क्या बात है ?''

पहली बार पूछने पर उसने जवाब नहीं दिया। तब उस पंडित ने आग्रहपूर्वक दो-तीन बार यही बात पूछी। शांतनु के हाथ से चाकू गिर पड़ा और उसने सारी बात सच-सच बता दी।

पंडित : ''शांतनु ! यह काम तुम्हारे योग्य नहीं है, तुम्हारे लायक नहीं है। तुम ब्राह्मण हो। बकरे को चाकू मारना तो कसाई का काम है।''

'यह तुम्हारे योग्य नहीं है...' ये शब्द सुनकर शांतनु के जीवन ने करवट बदली और वही शांतनु 'स्वामी अखंडानंद सरस्वती' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कितना सामर्थ्य छुपा है शब्दों में ! किताबें पढ़कर, लकीर के फकीर होकर अथवा अनपढ़ होकर भी क्या करोगे ? न अधिक ऐहिक पढ़ाई अच्छी है न अनपढ़ रहना अच्छा है। अच्छे में अच्छा तो परमात्मदेव का ज्ञान है, परमात्मप्रीति है, परमात्मरस है, वही सार है।

न निर्धन होने में सार है, न धनवान् होने में सार है। महिला होने में भी सार नहीं, पुरुष होने में भी सार नहीं। मूर्ख होने में भी सार नहीं, विद्वान् होने में भी सार नहीं। बहुत जीने में भी सार नहीं, जल्दी मरने में भी सार नहीं। यक्ष-गंधर्व होने में भी सार नहीं और देवता होने में भी सार नहीं। वशिष्ठजी महाराज कहते हैं कि : ''हे रामजी ! मैं चौदह भुवनों में घूमा। अतल, वितल, तलातल, रसातल, पाताल एवं भूर्लोक, भुवर्लोक, जनलोक आदि में भी घूम आया किन्तु कहीं भी सार नहीं। केवल एक जगह पर ही सार दिखा। जहाँ संत का मन ठहरता है उस आत्मा में सार है, उस परमात्मा में सार है।''

अतः उसीका नाम-स्मरण करो, उसीके शब्द सुनो, उसीकी ओर ले जानेवाले शब्द बोलो-सोचो और उसीकी शांति, आनंद पाने का पुनः पुनः अभ्यास करो।

चालू व्यवहार में से दो मिनट के लिये एकदम उपराम होकर विराम लो। सोचो कि : 'मैं कौन हूँ ? सर्दी-गर्मी शरीर को लगती है। भूख-प्यास प्राणों को लगती है। अनुकूलता-प्रतिकूलता मन को लगती है। शुभ-अशुभ एवं पाप-पुण्य का निर्णय बुद्धि करती है। मैं न शरीर हूँ, न प्राण हूँ, न मन हूँ, न बुद्धि हूँ। मैं तो हूँ इन सबको सत्ता देनेवाला, इन सबसे न्यारा निर्लेप आत्मा।'

(आश्रम की पुस्तक 'पंचामृत' से)

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

ईश्वरीय पथ के वे पथिक...

पुराण में एक कथा आती है :

एक बार १२ वर्ष तक अकाल पड़ा। लोग भूखों मरने लगे। सारस्वत्य नगर के अरण्य से सप्तऋषि भी चल पड़े। चलते-चलते वे विदर्भ की राजधानी में पहुँचे।

उस वक्त विदर्भ में राजा वृषध्वज राज्य करते थे। राजा वृषध्वज ने ऋषियों का सम्मान किया और उन्हें अपने ही महल में रखने का यत्न किया। वशिष्ठजी, अत्रि, जमदग्नि आदि ऋषियों ने कहा :

''तुम्हारा महल रजोगुणी है। **गृहस्थी के यहाँ राजसी वातावरण में रहने से सात्त्विकता क्षीण होती है, ध्यान-भजन का प्रभाव घट जाता है।** अतः हम तुम्हारे यहाँ का अन्न ग्रहण नहीं कर सकते। राजकोष में तो न जाने कहाँ-कहाँ से अन्न आता है। **कसाईखाने से भी राजकोष में धन आता है। उस धन का अन्न भजन का नाश करता है।** हम तो कंदमूल-फल खानेवाले, एकांत अरण्य में निवास करनेवाले हैं। **हमारा लक्ष्य ब्रह्म-परमात्मा है। हम यहाँ नहीं रह सकते।''**

ऋषियों के इन वचनों से राजा को अपना अपमान लगा। उसके अहंकार को ठेस लगी। ऋषि तो चले गये किन्तु उस अहंकारी राजा ने ऋषियों को परेशान करने का संकल्प कर लिया।

यथा राजा तथा प्रजा। मंत्रियों ने षड्यंत्र रचा कि : 'ऋषि भूखे-प्यासे हैं और उनका आहार कंदमूल होता है। क्यों न हम उनके मार्ग में कंदमूल-फल रख दें एवं फलों के अंदर स्वर्ण मुहरें रख दें ? यदि वे फल उठायेंगे और स्वर्ण लेंगे तो लोभ में पड़कर उनका तप क्षीण होगा। फिर उन्हें पराजित करना आसान हो जायेगा।'

व्यवस्था की गयी। ऋषि पहुँचें उसके पहले ही उनके मार्ग में फल रख दिये गये। अनुचर छुपकर ऋषियों की प्रतीक्षा करने लगे। चलते-चलते ऋषि उस जगह पर पहुँचे, जहाँ फल रखे गये थे।

भारद्वाज ऋषि ने एक फल उठाया और देखा तो फल भारी था तथा उसमें एक चीरा भी पड़ा हुआ था। भारद्वाज ऋषि ने उस फल को जोर से फेंका तो उसमें से स्वर्णमुद्राएँ निकलीं। ऋषिगण समझ गये कि : 'यह विदर्भनरेश का छल है। **प्राण जायें तो भले चले जायें परन्तु मोक्षमार्ग का त्याग नहीं करेंगे।**' जीवन में दृढ़ निश्चय था, अडिगता थी इसीलिए वे पूजे जाते हैं। ईश्वर का प्यारा ईश्वर के लिए प्राणों का बलिदान देना स्वीकार करता है किन्तु प्राणों को रखने के लिए ईश्वर का त्याग कदापि स्वीकार नहीं करता।

सप्तर्षि आगे बढ़े। चलते-चलते वे एक विशाल सरोवर के पास पहुँचे। कमलों से आच्छादित तालाब के पास एक संन्यासी बैठे थे। संन्यासी ने उन ऋषियों का स्वागत किया। ऋषियों को हुआ कि : 'यह भी कोई पाखंडी न हो... राजा की कोई चाल न हो !' ऐसा विचारकर वे तालाब के दूसरे किनारे पर जा बैठे। संन्यासी उठकर उनके पास गये एवं नतमस्तक होकर बोले :

''हे मुनीश्वरो ! मेरे चित्त में धर्म के विषय में संदेह उत्पन्न हो रहा है। आप कृपा करके मेरे संदेह का निवारण करें। मैं परीक्षा लेने हेतु नहीं, कपट करने हेतु नहीं, वरन् धर्म का रहस्य जानने के लिए आपकी शरण में आया हूँ।''

ऋषियों ने कहा : ''क्रोध से तप क्षीण होता है। दया धर्म का मूल है और पाप का मूल अभिमान है। अभिमान का त्याग, क्रोध का त्याग एवं दया तथा समता का अंगीकार- ये धर्म के अंग हैं। धर्म से वैराग्य होता है, वैराग्य से योग आता है एवं योग

से ज्ञान होता है। ज्ञान से मोक्ष मिलता है। धर्म का फल है मुक्ति।''

संन्यासी : ''आपके उपदेश से मेरा संशय निवृत्त हुआ। मैं धन्य हुआ।''

इतने में अनुचरों ने जाकर विदर्भनरेश को समाचार दिया कि : ''ऋषिगण उन स्वर्णमुद्राओं में नहीं फँसे। 'मोक्ष के आगे स्वर्ण की क्या कीमत है ? आत्मसुख के आगे राजवैभव का क्या मूल्य है ? यह सब छल है।' यह कहकर वे तो आगे चल पड़े।''

सचमुच, इन इन्द्रियों को आकर्षित करने के लिए सारा संसार ही एक छल है। माया का कपट है। जीव उसमें फँस जाता है एवं उसे पकड़कर 'मेरा-मेरा' करके मर जाता है। वह भूल जाता है कि उसे यह मनुष्य जन्म मोक्षप्राप्ति के लिए मिला है।

अनुचरों ने आगे कहा : ''ऋषियों ने फल को उठाया एवं फेंककर देखा तो उसमें से स्वर्णमुद्राएँ निकलीं अतः फलों को वहीं छोड़कर वे आगे बढ़ गये।''

यह सुनकर राजा के अहंकार को और भी ठेस लगी कि : ''मेरे स्वर्ण से भरे फलों का भी उन्होंने त्याग कर दिया ! उन ऋषियों को तो मैं देख लूँगा।''

राजा ने ऋषियों के पास एक राक्षसी को भेजा। राक्षसी ऋषियों के पास आयी। दयालु, आत्मपरायण ऋषियों पर राज्यसत्ता जुल्म कर रही है- यह देखकर संन्यासी के चित्त में क्षोभ हुआ। ज्यों-ही राक्षसी ऋषियों की ओर दौड़ी त्यों-ही गहरा श्वास लेकर संन्यासी ने अपना दण्ड उठाया जिससे राक्षसी वहीं गिर पड़ी और भस्म हो गयी। जिन्होंने संन्यास का वरण किया है, जिनकी इच्छा एवं अहंकार का विलय हो गया है ऐसे महापुरुष ने देखा कि ईश्वर के मार्ग पर चलनेवाले ऋषियों को असामाजिक तत्त्व परेशान कर रहे हैं तो उनके सहज गर्म श्वास से ही राक्षसी गिर पड़ी।

राक्षसी को भस्म हुआ देखकर ऋषियों ने पूछा : ''हे संन्यासी ! आप कौन हैं ?''

तब संन्यासी ने अपने मूल स्वरूप में प्रग होकर कहा :

''हे ऋषिवरो ! मैं देवराज इन्द्र हूँ। विदर्भरा ने आपका इतना विरोध किया फिर भी आपने अप चित्त में समता एवं शांति को बनाये रखा। भूख प्यास को सहन किया किन्तु चित्त की शांति ए समता का त्याग नहीं किया। धर्म का त्याग नह किया, ऐसे महापुरुषों के पास मैं धर्म का रहस्य जानने के लिए आया था। यदि आपने क्रोध किय होता तो राजा का अहित होता किन्तु आपने क्रोध न करके भी अपनी तपस्या की रक्षा की। आप लोग धन्य हैं।''

जो परमात्मा के मार्ग पर तमाम विघ्न-बाधाएँ सहकर भी चित्त की समता और शांति बनाये रखते हैं एवं ईश्वर का मार्ग नहीं छोड़ते, वे चिरआदरणीय हो जाते हैं। ऋषिपद को पाने में समर्थ हो जाते हैं, उनकी याद भी हमारे हृदयों को पावन कर देती है, हमें पाप-तापों से मुक्त कर देती है एवं ईश्वर के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है।

*

आठ प्रकार के पुष्प

एक बार राजा अम्बरीष ने देवर्षि नारद से पूछा :

''भगवान की पूजा के लिये भगवान को कौन-से पुष्प पसंद हैं ?''

नारदजी : ''राजन् ! भगवान को आठ प्रकार के पुष्प पसंद हैं। उन आठ प्रकार के पुष्पों से जो भगवान की पूजा करता है, भगवान उसके हृदय में प्रकट हो जाते हैं। उसकी बुद्धि भगवद्-ज्ञान में गोता लगाकर ऋतंभरा प्रज्ञा हो जाती है। उसके २१ कुल तर जाते हैं।''

अम्बरीष : ''महात्मन् ! देर न करें। कृपा करके जल्दी बताइये कि वे कौन-से पुष्प हैं जिनसे भगवान प्रसन्न होते हैं। मैं वे पुष्प बगीचे से मँगवाऊँ और अगर बगीचे में नहीं होंगे तो उनके पौधे मँगवाकर उन्हें अपने बगीचे में

लगवाऊँ। भगवान जिन पुष्पों से प्रसन्न होते हैं, मैं वे पुष्प जरूर लगवाऊँगा एवं प्रतिदिन उन्हीं पुष्पों से भगवान की पूजा करूँगा।''

नारदजी मंद-मंद मुस्कराये एवं बोले :

''अम्बरीष ! वे पुष्प किसी माली के बगीचे में नहीं होते। वे पुष्प तो तुम्हारे दिलरूपी बगीचे में ही हो सकते हैं।''

अम्बरीष : ''महाराज ! अगर मेरे दिल में वे पुष्प हो सकते हैं तो मैं वहाँ जरूर बोऊँगा और वे ही पुष्प भगवान को चढ़ाऊँगा। देवर्षि ! जल्दी कहिये कि जिन पुष्पों से श्रीहरि संतुष्ट होते हैं और पूजा करनेवाले को भगवन्मय बना देते हैं वे कौन-से पुष्प हैं ? देवर्षि ! अब मेरी जिज्ञासा बहुत बढ़ गयी है। कृपा करके अब बता दीजिये।''

राजा अम्बरीष यह कह टकटकी लगाये देवर्षि की ओर देखने लगे। मानों, उनके कानों में भी आँखों की जिज्ञासा जाग गयी और आँखों में भी कानों की जिज्ञासा जाग गयी !

तब नारदजी ने कहा : ''पुण्यात्मा अम्बरीष ! भगवान इन आठ पुष्पों से प्रसन्न होते हैं एवं इन पुष्पों से पूजा करने पर प्रगट हो जाते हैं तथा भक्त को अपने से मिला देते हैं। जैसे तरंग को पानी अपने में मिला दे, घटाकाश को महाकाश अपने में मिला दे वैसे ही जीव को ब्रह्म अपने में मिला देता है। फिर वह बाहर से भले राजा ही दिखे लेकिन भीतर से परमात्मा के साथ एक हो जाता है। ऐसे वे आठ पुष्प हैं।''

राजा अम्बरीष का धैर्य टूटा। वे बोले : ''देवर्षि ! देर न कीजिये, अब बता भी दीजिये।''

नारदजी : ''वे आठ पुष्प इस प्रकार हैं :

१. इन्द्रियनिग्रह : इधर-उधर फालतू जगह पर देखने, सूँघने, सोचने, भटकने की आदत को रोकना। इसको कहते हैं इन्द्रियनिग्रहरूपी पुष्प।

२. अहिंसा : मन-वचन-कर्म से किसीको दुःख न देना।

३. निर्दोष प्राणियों पर दया : मूक एवं निर्दोष प्राणियों को न सताना। दोषी को अगर दण्ड भी देना हो तो उसके हित की भावना से देना।

४. क्षमारूपी पुष्प।

५. मनोनिग्रह : मन को एक जगह पर लगाने का अभ्यास करना, एकाग्र करना।

६. ध्यान : भगवान का ध्यान करना।

७. सत्य का पालन करना।

८. श्रद्धा : भगवान और भगवान को पाये हुए महापुरुषों में दृढ़ श्रद्धा रखना।

इन आठ पुष्पों से भगवान तुरंत प्रसन्न होते हैं एवं वे साधक को सिद्ध बना देते हैं।''

*

भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी

[गतांक से आगे]

तुलसीदास ससुराल से चलकर प्रयाग आये। वहाँ गृहस्थ-वेश छोड़कर साधु वेष धारण किया। फिर अयोध्यापुरी, रामेश्वर, द्वारिका, बदरीनारायण, मानसरोवर आदि स्थानों में तीर्थाटन करते हुए काशी पहुँचे। मानसरोवर के पास उन्हें अनेक संतों के दर्शन हुए, काकभुशुण्डिजी से मिले और कैलास की प्रदक्षिणा भी की। इस प्रकार अपनी ससुराल से चलकर तीर्थ-यात्रा करते हुए काशी पहुँचने में उन्हें चौदह वर्ष, दस महीने, सत्रह दिन लगे।

वे काशी में प्रतिदिन भगवान् राम की कथा कहते थे। साधुलोग बड़े आनन्द से सुनते। वहाँ एक विचित्र घटना घटी। तुलसीदासजी प्रतिदिन शौच होने जंगल में जाते, लौटते समय जो अवशेष जल होता, उसे एक पीपल के वृक्ष के नीचे गिरा देते। उस पीपल पर एक प्रेत रहता था। उस जल से प्रेत की प्यास मिट जाती। जब प्रेत को मालूम हुआ कि ये महात्मा हैं, तब एक दिन प्रत्यक्ष होकर उसने कहा कि 'आपकी जो इच्छा हो, कहिये, मैं पूर्ण करूँगा।' तुलसीदासजीने कहा कि मैं दशरथ-कुमार भगवान् राम का दर्शन करना चाहता हूँ।' प्रेतने कुछ सोचकर कहा कि कथा सुनने के लिए प्रतिदिन श्रीहनुमानजी आते हैं। उन्हें इस प्रकार पहचाना जा सकता है कि वे सबसे पहले आते और सबसे पीछे जाते हैं। उनका वेश अमंगल होता है। शरीर में कोढ़ दीखता है। समय देखकर उनके चरण पकड़ लेना और हठ करके भगवान का दर्शन कराने को कहना। तुलसीदासजी ने वैसा ही किया। श्रीहनुमानजी ने कहा कि, 'तुम्हें चित्रकूट में भगवान् के दर्शन होंगे।' तुलसीदासजी ने चित्रकूट की यात्रा की।

उस समय मार्ग में तुलसीदासजी के मन की क्या अवस्था होगी, इस बात का अनुभव उन्हीं लोगों को हो सकता है, जिन्होंने ऐसी ही मनोदशा में कभी यात्रा की है।

श्रीमद्भागवत में मथुरा से वृन्दावन जाते समय अक्रूरजी की जो मनोदशा हुई थी, तुलसीदासजी की भी उससे मिलती-जुलती ही थी। श्रीहनुमानजी ने कहा था कि चित्रकूट में भगवान् के दर्शन होंगे। इस बात पर उन्हें पूर्ण विश्वास था, तथापि वे अपने कर्मों को सोचकर निराश हो जाते। वे सोचने लगते कि अनेकों जन्मतक तपस्या करनेवाले अपने शुद्ध अन्तःकरण से जिनका ध्यान करने में असमर्थ होते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीराम के दर्शन मेरे जैसे विषयासक्त, साधनहीन प्राणी को कैसे होंगे ? दूसरे ही क्षण में उन्हें भगवान की दयालुता का स्मरण हो आता और वे आतुर होकर अपने शरीर की सुध भूलकर बड़े वेग से चित्रकूट की ओर दोड़ने लगते।

चित्रकूट में रामघाट पर उन्होंने अपना आसन लगाया। वे प्रतिदिन मन्दाकिनी में स्नान करते, मन्दिर में भगवान के दर्शन करते, रामायण का पाठ करते और निरन्तर भगवान् के नाम का जप करते। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने गये। मार्ग में उन्हें अनूपरूप-भूप-शिरोमणि भगवान् राम के दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार दो घोड़ों पर सवार होकर हाथ में धनुषबाण लिए

जा रहे हैं। उन्हें देखकर तुलसीदास मुग्ध हो गये। परन्तु ये कौन हैं-यह नहीं जान सके। पीछे से श्रीहनुमानजी ने प्रकट होकर सारा भेद बताया। वे पश्चात्ताप करने लगे, उनका हृदय उत्सुकता से भर गया। श्रीहनुमानजी ने उन्हें धैर्य दिया कि प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे। तब कहीं जाकर तुलसीदासजी को संतोष हुआ।

संवत् १६०७, मौनी अमावस्या, बुधवार की बात है। प्रातःकाल होते-न-होते तुलसीदासजी विरह से व्याकुल होकर बैठ गये और मार्ग में अपनी पलकों का पाँवड़ा बिछाकर निर्निमेष नयनों से भगवान् राम के आने की प्रतीक्षा करने लगे। उसी समय भगवान् राम प्रकट हुए। उन्होंने तुलसीदास को संबोधन करने को कहा 'बाबा हमें चन्दन दो!' श्रीहनुमान्जी ने सोचा कि शायद इस बार भी तुलसीदास जी न पहचानें, इसलिए उन्होंने तोते का रूप धारण करके चेतावनी का दोहा पढ़ा-

चित्रकूट के घाट पै भई संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसें तिलक देत रघुवीर॥

तुलसीदास अतृप्त नेत्रों से भगवान् राम की मनमोहिनी छबिसुधा का पान करने लगे। देह की सुध भूल गयी, आँखों से आँसू की धारा बह चली। अब चन्दन कौन घिसे! भगवान् ने पुनः कहा कि - 'बाबा मुझे चन्दन दो!' परन्तु सुनता कौन ? वे बेसुध पड़े थे। भगवान् ने अपने हाथ से चन्दन लेकर अपने एवं तुलसीदास के ललाट में तिलक किया और अन्तर्धान हो गये। तुलसीदासजी पानी-विहीन मछली की भाँति विरहवेदना से तड़फड़ाने लगे। सारा दिन बीत गया, उन्हें पता नहीं चला। रात में आकर श्रीहनुमानजी ने जगाया और उनकी दशा सुधार दी।

उन दिनों तुलसीदासजी की बड़ी ख्याति हो गयी थी। गाँव की स्त्रियाँ तोते को पढ़ाते समय भी तुलसीदासजी की महिमा ही पढ़ाया करती थीं। उनके द्वारा कई चमत्कार की घटनाएँ भी घट गयीं, जिनसे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी और बहुत-से लोग उनके दर्शन को आने लगे। भीड़-भाड़ से तुलसीदासजी ऊब गये, वे एक गुफा में रहने लगे। चाहे कोई आये या जाय, वे निकलते ही नहीं थे। बहुत-से लोग आते, निराश होकर लौट जाते। एक दिन दरियास्वामी आये और गुफा के द्वार पर अड़ गये कि मैं बिना दर्शन किये जाऊँगा ही नहीं। जब तुलसीदासजी लघुशंका (पेशाब करने) के लिए बाहर निकले तब उनसे भेंट हुई। उन्होंने कहा कि लघुशंका आने पर तो आप बाहर निकलते हैं और हम लोगों के आने पर नहीं निकलते तो क्या हम लघुशंका से भी गये-बीते हैं ? अंत में उन्होंने प्रार्थना की कि एक मचान बाँधकर आप बाहर बैठ जायँ, लोग दर्शन करके नीचे से लौट जाया करेंगे। तुलसीदासजी ने उनका हठ मान लिया, कुछ समय के लिए वे बाहर बैठ गये। सब लोग आकर दर्शन करते और अपने जीवन को धन्य बनाते। उन दिनों वृन्दावन, सण्डीला आदि अनेक स्थानों से संत-महात्मा आते और इनका दर्शन पाकर कृतार्थ होते।

संवत् १६१६ में जब तुलसीदासजी कामदगिरि के पास निवास कर रहे थे, तब गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी की प्रेरणा से श्रीसूरदासजी उनके पास आये। उन्होंने तुलसीदाजी को अपना सूरसागर दिखाया और दो पद गाकर सुनाये, तुलसीदासजीने पुस्तक उठाकर हृदय से लगा ली और भगवान् श्रीकृष्ण की बड़ी महिमा गायी। सूरदासजी का हाथ पकड़कर उन्हें सन्तुष्ट किया और श्रीगोकुलनाथजी को एक पत्र लिख दिया। सात दिन सत्संग करके सूरदासजी लौट गये।

उन्हीं दिनों मेवाड़ से मीराबाईका पत्र लेकर सुखपाल नामक ब्राह्मण आया था। उनकी चिट्ठी पढ़कर तुलसीदासने यह पद बनाकर उत्तर दिया कि सब छोड़कर भगवान् का भजन करना ही उत्तम है -

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम स्नेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज वनितन्हि, भये मुद मंगलकारी॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौ॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासो होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो॥

(क्रमशः)

संतत्व और शूरता का संगम

[श्री गुरु हरगोविन्दसिंहजी जयंती : ७ जून २००१]

सिक्खों के छठवें गुरु श्री हरगोविंदसिंहजी के बारे में भाई गुरुदासजी ने कहा है :

अरजन काईया पलटि कै मूरति हरिगोविंद सवारी।
दलभंजन गुर सूरमा वड जोधा बहु पर उपकारी ॥

संवत् १६५२ में आषाढ़ कृष्ण पक्ष ६ को गाँव वडाली, जिला अमृतसर में पंचम गुरु श्री अर्जुनदेवजी के घर माताश्री गंगा देवीजी की कोख से गुरु हरगोविंदसिंहजी का जन्म हुआ।

मात्र ११ वर्ष की उम्र में आपको गुरुगद्दी पर विराजित किया गया। श्री गुरु अर्जुनदेवजी की शहादत के बाद पुरातन गुरु-मर्यादा के अनुसार सेली एवं माला-फकीरी के चिह्न धारण करने की जगह श्री गुरु हरगोविंदसिंहजी ने दो तलवारें, एक दायें एक बायें तरफ धारण की। इसका कारण बताते हुए आपने कहा था :

''अब भक्ति के साथ शूरवीरता का होना भी ज़रूरी है इसलिए शूरवीरता के चिह्न धारण करने की आवश्यकता है। केवल सेली तथा माला अपनाने का अब यह समय नहीं रहा।''

उनकी ये तलवारें 'मीरी' और 'पीरी' के नाम से विख्यात हैं। कैसे होते हैं महापुरुष ! वर्तमान समाज की उन्नति जिसमें निहित हो, उसी के अनुसार उनकी चेष्टाएँ होती हैं।

गुरु हरगोविंदसिंहजी भक्ति के साथ-साथ शूरवीरता का भी उपदेश देते थे। वे स्वयं घुड़सवारी एवं अस्त्र-शस्त्र का भी अभ्यास करते थे। इसी प्रकार अपने भक्तों से भी करवाते थे।

उस वक्त दिल्ली के तख्त पर जहाँगीर था। जहाँगीर का दीवान चंदू अपनी बेटी की शादी हरगोविंदसिंहजी से करवाना चाहता था लेकिन अर्जुनदेवजी ने यह रिश्ता ठुकरा दिया था।

अतः द्वेषवश चंदू जहाँगीर के कान भरता रहता था कि : ''गुरु अर्जुनदेव का पुत्र हरगोविंदसिंह अपने पिता की शहीदी का बदला लेने के लिए जंग का सामान तथा सेना इकट्ठी कर रहा है। उसने गद्दी लगाकर बैठनेवाली अपनी पुरानी मर्यादा छोड़कर अपने बैठने के लिए तख्त बना लिया है। उस तख्त पर बैठकर बादशाहों की तरह अदालत लगाता है तथा आदेश देता है। फकीर होकर तख्त पर बैठना ? तख्त बादशाहों के लिए होते हैं, फकीरों के लिए गद्दियाँ होती हैं। वह अपने-आपको सच्चा बादशाह कहलाता है। उसको अगर अभी वश में न किया गया तो फिर वह किसी दिन भी हुजूर की बादशाही को खतरा पैदा कर सकता है।''

चंदू की ऐसी उकसानेवाली बातें सुनकर जहाँगीर ने हरगोविंदसिंहजी को दिल्ली बुला लिया एवं ग्वालियर के किले में कैद करवा दिया। उस समय ग्वालियर का किला मुगल बादशाहों के विरोधियों तथा राजघरानों के लिए एक बहुत प्रसिद्ध बंदीगृह बना हुआ था। जो एक बार इसमें बंद किया जाता था वह फिर मरकर ही बाहर निकलता था।

इससे माता को चिंता हो गयी एवं उन्होंने साँईं मियाँ मीरजी के पास संदेश भिजवाया। जहाँगीर साँईं मियाँ मीरजी की बड़ी इज्जत करता था। अतः जब उनके द्वारा चंदू की शिकायत की असलियत का पता चला तब जहाँगीर ने हरगोविंदसिंहजी को रिहा करने का आदेश दे दिया। किन्तु हरगोविंदसिंहजी अकेले रिहा कैसे होते ?

उस वक्त उस किले में ५२ राजपूत राजा एवं राजघराने के लोग भी कैद थे, जो खुसरो की मदद करने के आरोप में बंदी थे। गुरु हरगोविंदसिंहजी ने उनसे बादशाह के प्रति वफादार रहने का वचन लेकर तथा जहाँगीर को स्वयं उनकी वफादारी का भरोसा देकर उनको भी कैद में से छुड़वाया। इस

परोपकार के परिणामस्वरूप ये **'बंद छोड़ पीर'** के नाम से पहचाने जाने लगे । कहा जाता है कि : इसकी यादगार के रूप में ग्वालियर के किले में एक चबूतरे पर आज भी **'बंद छोड़ पीर'** का बोर्ड लगा हुआ है ।

रिहाई के बाद जहाँगीर प्रगट तौर पर गुरु हरगोविंदसिंहजी से प्रेम करता था किन्तु भीतर से उन पर भरोसा नहीं करता था । जहाँगीर ने उनके पिता गुरु अर्जुनदेवजी को कष्ट दे-देकर मरवाया था । उसको भय था कि : 'कहीं ये अपने पिता का वैर लेने के लिए मुझसे आज़ाद होकर मेरे विरुद्ध कोई बगावत न कर दें ।' इसलिए जहाँगीर हमेशा उन्हें अपनी निगरानी में ही रखना चाहता था किन्तु यह कब तक संभव हो पाता ?

संवत् १६८४ में जहाँगीर की मृत्यु हुई । उसका बड़ा पुत्र शाहजहाँ दिल्ली के तख्त पर बैठा । शाहजहाँ की सेना के साथ गुरु हरगोविंदसिंहजी के चार युद्ध हुए । प्रत्येक युद्ध में यवनों की सेना कई गुना ज्यादा होते हुए भी विजय गुरु हरगोविंदसिंहजी की ही हुई । सच है, जहाँ धर्म होता है वहाँ विजय होती ही है ।

अंतिम युद्ध संवत् १६९१ के बाद उन्होंने अपना निवास-स्थान कीरतिपुर में बना लिया एवं दूर-दूर जाकर सिक्ख धर्म का प्रचार किया । कश्मीर, पीलीभीत, बार और मालवा देशों में जाकर लाखों लोगों को आपने मुक्ति-पथ की ओर अग्रसर किया । आप अनेकों मुसलमानों को सिक्खी-मण्डल में ले आये एवं देश-देशांतरों में उदासी प्रचारकों को भेजकर श्रीगुरु नानकदेवजी का झंडा फहराया ।

संवत् १७०१ में चैत्र शुक्ल पक्ष ५ तदनुसार ३ मार्च १६४४ को आपने अपने योग्य पोते श्री हरिरायजी को गुरुगद्दी सौंपकर परलोकगमन किया ।

कर्म ऐसे करो कि परम नशे में झुमानेवाले अमृत के पास ले जाय । ध्यान इतना गहरा करो कि मौत पर तुम्हारी नजर पड़ जाय तो मौत भी मधुर हो जाय ।

सच्चरित्र की गंगा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सन् १९२५ में काकोरी कांड हुआ । क्रांतिकारी युवकों ने ब्रिटिश सल्तनत को हिलाकर रख दिया था । दुर्भाग्य से वह कांड सफल न हुआ । मंडली के सदस्य बिखर गये ।

काकोरी कांड के प्राण चंद्रशेखर आज़ाद ने भी काकोरी छोड़ा एवं ब्रिटिश गुप्तचरों की नज़रों से ओझल होकर झाँसी के पास एक छोटे-से गाँव ठिमरपुरा पहुँच गये ।

कोई नहीं जानता था कि धोती एवं जनेऊ में सुसज्ज ये ब्राह्मण देवता आज़ादी की अधिष्ठात्री देवी के सबसे प्रिय पुजारी 'आज़ाद' हैं । गाँव के बाहर मिट्टी की छोटी-सी दीवारों के भीतर आज़ाद रहने लगे । दिनभर कथाकार की तरह कथा करते एवं शाम को गीता, महाभारत और रामायण के श्लोकों से ग्रामवासियों का दिल जीत लेते ।

धीरे-धीरे लोग उन्हें 'ब्रह्मचारीजी' के लाड़ले नाम से संबोधित करने लगे । किन्तु एक दिन...

आज़ाद चिंतनमग्न बैठे थे कि इतने में उन्होंने चूड़ियों के खनखनाहट एवं पायलों के झंकार की आवाज सुनी । यह आवाज रूप-यौवनसंपन्न एक नारी की चूड़ियों एवं पायल की थी । आश्चर्यचकित होकर आज़ाद ने पूछा :

''बहन ! क्या बात है ? क्यों आयी हो ?''

धीरे-धीरे हँसते हुए वह स्त्री बोली :

''ब्रह्मचारी जी ! मैं अकेली ही यहाँ आयी हूँ ।''

कभी-कभी वह स्त्री अपनी बहन के साथ

दिखती थी। कथा में उसकी उपस्थिति होती ही थी। बहन ने उस स्त्री का परिचय दिया था। वह गाँव के जमींदार की पत्नी थी।

आज़ाद : ''परन्तु अभी आपको कौन-सा काम आ पड़ा ? क्या किसी शास्त्र का शंका समाधान करना है ?

आज़ाद के पास कई बार पहले भी ये बहनें शास्त्र-प्रसंग छेड़ती थीं और आज़ाद उनका समाधान करते थे।

वह स्त्री हँस पड़ी और बोली : ''समाधान... ब्रह्मचारीजी ! छोड़ो ये रामायण-महाभारत की सब बातें। मैं तो आपके पास कुछ माँगने आयी हूँ।''

जिंदगीभर हिमालय की तरह अडिग रहनेवाले आज़ाद भी कुछ क्षण असमंजस में पड़ गये। वह स्त्री धीमी गति से आज़ाद की ओर बढ़ने लगी। तब तक आज़ाद को उसका उद्देश्य समझ में आ चुका था। वे जरा कड़क आवाज में बोले :

''तू घर भूली है बहन ! जा, वापस लौट जा।''

वह बोली : ''बस बस, ब्रह्मचारीजी ! मैं आपके सामने स्वेच्छा से आकर समर्पित भाव से खड़ी हूँ, ये क्यों भूल रहे हैं ? मैं दूसरा कुछ नहीं माँगती। केवल आपको ही माँगती हूँ।''

आज़ाद काँप उठे। उठकर दरवाजे की ओर जाने लगे तो वह स्त्री दरवाजे के बीच खड़ी रह गयी और बोली : ''मेरा आमंत्रण अस्वीकार करोगे तो कहाँ जाओगे ? जाने के लिए तो दरवाजा है परन्तु मैं आपको निष्कलंक जाने दूँगी ऐसा मानते हो ? बाहर जाओगे तो चिल्लाकर पूरे गाँव को इकट्ठा करूँगी और बेइज्जती करके कहूँगी कि तुम्हारे इस पुराण-पंडित ने मेरी लाज लूटी है।''

आज़ाद ज्यादा न सुन सके। धाक-धमकी और बेइज्जती के भय से अपना संयम-सत्व नाश कर देना उन्हें किसी भी कीमत पर स्वीकार न था। वे बहादुर, संयमी और सदाचारी थे। वे दौड़कर दरवाजे के पास पहुँचे दरवाजे पर धक्का मारा किन्तु दरवाजा बाहर से बंद था। अब क्या करें ?

आज़ाद क्षणभर स्तब्ध रह गये ! सच्चरित्र की गंगा गटर बन जाये यह उन्हें स्वीकार न था। दूसरे ही क्षण उनके मन में बिजली कौंधी। उन्होंने एक ऊँची नज़र की। चारों तरफ १२ फीट की दीवारें थीं। उनका पौरुष जाग उठा। कूदकर दीवार पर चढ़ गये और दूसरी तरफ कूदकर तेज रफ़्तार से गाँव के बाहर दौड़ गये।

यह उनके ब्रह्मचर्य का बल नहीं तो और क्या था ? रूप-यौवनसंपन्न नारी सामने स्वेच्छा से आयी फिर भी देश के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करनेवाले 'आज़ाद' को वह बाँध न सकी। ऐसे ऐसे संयमी-सदाचारी देशभक्तों के पवित्र बलिदान से भारत आज़ाद हो पाया है।

आज उसी भारत पर फिर से संकट छा रहा है। चलचित्र, विदेशी चैनल, अश्लील साहित्य, सायबर कैफे आदि के माध्यम से भारत के युवाधन को नष्ट करने का जाल बिछाया जा रहा है। अतः हे भारत के नौजवानो ! सावधान ! तुम अपने जीवन को कभी-भी इस षड्यंत्र का शिकार न होने देना। संत-महापुरुषों के द्वारा यौवन-सुरक्षा की युक्तियाँ जानकर अपने जीवन को तो ओजस्वी-तेजस्वी, संयमी-सदाचारी बनानां ही, साथ ही 'यौवन सुरक्षा' पुस्तक का पठन-पाठन करके औरों को भी प्रोत्साहित करना।

अपने चरित्र की रक्षा करके अपने देश व पूर्वजों की आन-बान और शान को कायम रखना - यह तुम्हारे हाथ की बात है। घबराओ मत हताश मत बनो। जो बीत गयी सो बात गयी... आज से तो क्या, अभी से नया जीवन... महापुरुषों के द्वारा बताये गये मार्गदर्शन के अनुसार जीवन बिताने का नया संकल्प... दृढ़ता, तत्परता और ईमानदारी से सन्मार्ग पर चलने की इच्छा अवश्य ही एक दिन उच्च लक्ष्य हासिल करवा देगी। फिर देरी क्यों ? उठो, जागो पाश्चात्य विलासी, विनाशी, खोखला करनेवाली रीतभात को ठुकरा दो, इस षड्यंत्रकारी जाल को छिन्न-भिन्न कर दो, जो तुम्हारी नींव को कमज़ोर करना चाहता है। शाबाश ! नौजवानो ! शाबाश ! ॐ... ॐ... ॐ... दृढता, ॐ... ॐ... ॐ... संयम, ॐ... ॐ... ॐ... सदाचार, ॐ... ॐ... ॐ... साहस ॐ... ॐ... ॐ...

शिष्य अपने दुःखों को नष्ट करने तथा आत्मसुख की प्राप्ति के लिए ही विवेक के साधन सिद्ध करता है।

सुखप्राप्ति के लिए ही सारे लोग प्रपंच-पदार्थों को गले लगाते हैं, लेकिन जिसे गुरु प्राप्त होता है उसे अद्वैत निजात्मसुख मिलता है।

हे उद्धव ! मेरे भक्त तत्त्व-विचार में लीन हो जाने के कारण घर-बार व संसार से उदासीन हो जाते हैं। वे गुरुचरणों का गाढ़ आलिंगन करके प्रपंच को झाड़ फेंकते हैं और आत्मसुख देनेवाले गुरुराज के भजन में बड़े भक्तिभाव से तत्पर होकर रहते हैं। भक्तिभाव से आठों प्रहर गुरुसेवा ही करते रहते हैं। वे अपने अंतःकरण को निरन्तर भक्तिभाव से गुरुचरणों में ही रत रखते हैं।

द्रष्टा कभी भी दृश्य नहीं हो सकता। देखने में आनेवाले दृश्य पदार्थ जड़ हैं और उनको देखनेवाला व जाननेवाला द्रष्टा चेतन होता है। इसीलिए आत्मा देह से विलक्षण या विपरीत लक्षणवाला है।

प्रपंच में मन की दक्षता दिखाई पड़ती है लेकिन वास्तव में वह मन की दक्षता नहीं होती। जिस प्रकार प्राणों के बिना राजा को भी अपना वैभव दृष्टि में नहीं आता। शस्त्र के एक घात से कवच भी टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, लेकिन इसमें शस्त्र का कोई सामर्थ्य नहीं है। यह तो शूर का बल है। लोह के एक पिण्ड को अग्नि में रख देने पर वह तप्त होकर खुद आग उगलने लगता है लेकिन इसमें कोई लोहपिण्ड का सामर्थ्य नहीं है। उस लोहखण्ड के समान ही मन भी जड़ ही है। ज्ञानप्रभा ही उसे प्रकाशित करके, श्रेष्ठत्व देकर प्रकृति में वर्तन करवाती है। मुरली से मधुर-मधुर नाना राग निकाले जायें या गायन किया जाये तो यह सब मुरली का सामर्थ्य नहीं है, यह तो बजानेवाले का कौशल है। इसी प्रकार मन का व्यापार भी परतंत्र है, स्वतंत्र नहीं क्योंकि मन भी जड़ ही है। परमात्म चैतन्य की सत्ता पाकर स्फुरित होता है।

सूर्य किरणों का स्पर्श होते ही जैसे सूर्यकान्तमणि से अग्नि निकलने लगती है, वैसे ही आत्मा के प्रकाश के कारण मन भी बड़े वेग से सब काम करता है। मन जड़ प्रकृति का ही भाग होने के कारण स्वयं भी जड़ ही है और आत्मा स्वप्रकाश होने के कारण प्रकाशघन है। अतः मन आत्मा के आधीन है और आत्मा आत्मत्व के कारण ही स्वाधीन है।

सभी कहते हैं : 'मेरा मन' लेकिन 'मैं ही मन' ऐसा कोई नहीं कहता। इससे सिद्ध ही है कि आत्मा मन से भिन्न है। वह भिन्न रूप से या साक्षी रूप से रहता है। स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों देहों से भिन्न, ऐसी दृष्टि से आत्मज्ञान को दृढ़तापूर्वक सिद्ध करके शिष्य ने अपनी देहबुद्धि का छेदन किया हुआ होता है अतः देहात्मवादी लोग जिस देहबुद्धि को सत्य मानते हैं, उसे शिष्य मिथ्या सिद्ध कर डालते हैं। अतः देहात्मवादियों की बुद्धि शुद्ध नहीं होती। इसीलिए आत्म-परमात्म सुख से वे वंचित रह जाते हैं। [*श्री एकनाथी भागवत से*]

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

एकादशी माहात्म्य

[योगिनी एकादशी : १७ जून २००१]

युधिष्ठिर ने पूछा : ''वासुदेव ! आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है ? कृपया उसका वर्णन कीजिये।''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''नृपश्रेष्ठ ! आषाढ़ के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम 'योगिनी' है। यह बड़े-बड़े पातकों का नाश करनेवाली है। संसारसागर में डूबे हुए प्राणियों के लिए यह सनातन नौका के समान है।

अलकापुरी के राजाधिराज कुबेर सदा भगवान शिव की भक्ति में तत्पर रहनेवाले हैं। उनका हेममाली नामक एक यक्ष सेवक था, जो पूजा के लिए फूल लाया करता था। हेममाली की पत्नी का नाम विशालाक्षी था। वह यक्ष कामपाश में आबद्ध होकर सदा अपनी पत्नी में आसक्त रहता था। एक दिन हेममाली मानसरोवर से फूल लाकर अपने घर में ही ठहर गया और पत्नी के प्रेमपाश में खोया रह गया, अतः कुबेर के भवन में न जा सका। इधर कुबेर मन्दिर में बैठकर शिव का पूजन कर रहे थे। उन्होंने दोपहर तक फूल आने की प्रतीक्षा की। जब पूजा का समय व्यतीत हो गया तो यक्षराज ने कुपित होकर सेवकों से कहा : 'यक्षो ! दुरात्मा हेममाली क्यों नहीं आ रहा है ?'

यक्षों ने कहा : 'राजन् ! वह तो पत्नी की कामना में आसक्त हो घर में ही रमण कर रहा है।'

बात सुनकर कुबेर क्रोध से भर गये और तुरन्त ही हेममाली को बुलवाया। वह आकर कुबेर के सामने खड़ा हो गया। उसे देखकर कुबेर बोले : 'ओ पापी ! अरे दुष्ट ! ओ दुराचारी ! तूने भगवा की अवहेलना की है, अतः कोढ़ से युक्त अ अपनी उस प्रियतमा से वियुक्त होकर इस स्था से भ्रष्ट होकर अन्यत्र चला जा।'

कुबेर के ऐसा कहने पर वह उस स्थान से नी गिर गया। कोढ़ से सारा शरीर पीड़ित था परन् शिव-पूजा के प्रभाव से उसकी स्मरणशक्ति लुप नहीं हुई। तदनन्तर वह पर्वतों में श्रेष्ठ मेरुगिरि के शिखर पर गया। वहाँ से मुनिवर मार्कण्डेयजी का उस दर्शन हुआ। पापकर्मा यक्ष ने मुनि के चरणों में प्रणाम किया। मुनिवर मार्कण्डेय ने उसे भय से काँपते देख कहा : 'तुझे कोढ़ के रोग ने कैसे दबा लिया ?'

यक्ष बोला : 'मुने ! मैं कुबेर का अनुच हेममाली हूँ। मैं प्रतिदिन मानसरोवर से फूल लाकर शिव-पूजा के समय कुबेर को दिया करता था एक दिन पत्नी-सहवास के सुख में फँस जाने के कारण मुझे समय का ज्ञान ही नहीं रहा, अतः राजाधिराज कुबेर ने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया, जिससे मैं कोढ़ से आक्रान्त होकर अपनी प्रियतमा से बिछुड़ गया। मुनिश्रेष्ठ ! संतों का चित्त स्वभावतः परोपकार में लगा रहता है, यह जानकर मुझ अपराधी को कर्तव्य का उपदेश दीजिये।'

मार्कण्डेयजी ने कहा : 'तुमने यहाँ सच्ची बात कही है, इसलिए मैं तुम्हें कल्याणप्रद व्रत का उपदेश करता हूँ। तुम आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष की 'योगिनी' एकादशी का व्रत करो। इस व्रत के पुण्य से तुम्हारा कोढ़ निश्चय ही दूर हो जायेगा।'

राजन् ! मार्कण्डेयजी के उपदेश से उसने योगिनी एकादशी का व्रत किया, जिससे उसके शरीर का कोढ़ दूर हो गया। उस उत्तम व्रत का अनुष्ठान करने पर वह पूर्ण सुखी हो गया।

नृपश्रेष्ठ ! यह योगिनी का व्रत ऐसा पुण्यशाली है कि अट्ठासी हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने से जो फल मिलता है, उसके समान ही फल योगिनी एकादशी का व्रत करने वाले मनुष्य को मिलता है। 'योगिनी' महान् पापों को शान्त करनेवाली और महान् पुण्य-फल देनेवाली है। इस माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। [*'पद्म पुराण'* से]

उपवास

भारतीय जीवनचर्या में व्रत एवं उपवास का विशेष महत्त्व है। इनका अनुपालन धार्मिक दृष्टि से किया जाता है परन्तु व्रतोपवास करने से शरीर भी स्वस्थ रहता है।

'उप' यानी समीप और 'वास' यानी रहना। उपवास का सही अर्थ होता है - ब्रह्म, परमात्मा के निकट रहना। उपवास का व्यावहारिक अर्थ है - निराहार रहना। निराहार रहने से भगवद्भजन और आत्मचिंतन में मदद मिलती है। वृत्ति अंतर्मुख होने लगती है। उपवास पुण्यदायी, आमदोषहर, अग्निप्रदीपक, स्फूर्तीदायक तथा इंद्रियोंको प्रसन्नता देनेवाला माना गया है। अतः यथाकाल, यथाविधि उपवास करके धर्म तथा स्वास्थ्य लाभ करना चाहिए।

आहारं पचति शिखी दोषान् आहारवर्जितः।

अर्थात् पेट की अग्नि आहार को पचाती है और उपवास दोषों को पचाता है। उपवास से पाचन शक्ति बढ़ती है। उपवास काल में रोगी शरीर में नया मल उत्पन्न नहीं होता है और जीवनशक्ति को पुराना जमा मल निकालने का अवसर मिलता है। मल-मूत्र विसर्जन सम्यक् होने लगता है, शरीर में हलकापन आता है तथा अतिनिद्रा-तंद्रा का नाश होता है।

उपवास की महत्ता के कारण भारतवर्ष के सनातन धर्मावलम्बी प्रायः एकादशी, अमावस्या, पूर्णिमा या पर्वों पर व्रत किया करते हैं क्योंकि उन दिनों सहज ही प्राणों का ऊर्ध्वगमन होता है और जठराग्नि मंद होती है। शरीर-शोधन के लिए चैत्र, श्रावण एवं भाद्रपद महीने अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। नवरात्रियों के नव दिनों में भी व्रत करने का बहुत प्रचलन है। यह अनुभव से जाना गया है कि एकादशी से पूर्णिमा तथा एकादशी से अमावस्या तक का काल रोग की उग्रता में भी अधिक सहायक होता है, क्योंकि जैसे सूर्य एवं चंद्रमा के परिभ्रमण के परिणामस्वरुप समुद्र में उक्त तिथियों के दिनों में विशेष उतार-चढ़ाव होता है उसी प्रकार उक्त क्रिया के परिणामस्वरूप हमारे शरीर में रोगों की वृद्धि होती है। इसीलिए इन चार तिथियों में उपवास का विशेष महत्त्व है।

रोगों में लाभकारी : आयुर्वेद की दृष्टि से शारीरिक एवं मानसिक रोगों में उपवास का विधान हितकारी माना गया है।

शारीरिक विकार : अजीर्ण, उल्टी, मंदाग्नि, शरीर में भारीपन, सिरदर्द, बुखार, यकृत-विकार, श्वासरोग, मोटापा, संधिवात, संपूर्ण शरीर में सूजन, खाँसी, दस्त लगना, कब्जियत, पेटदर्द, मुँह में छाले, चमड़ी के रोग, किडनी के विकार, पक्षाघात आदि व्याधियों में छोटे या बड़े रुप में रोग के अनुसार उपवास करना लाभकारी होता है।

मानसिक विकार : मन पर भी उपवास का बहुमुखी प्रभाव पड़ता है। उपवास से चित्त की वृत्तियाँ रुकती हैं और मनुष्य जब अपनी चित्त की वृत्तियोंको रोकने लग जाता है, तब देह के रहते हुए भी सुख-दुःख, हर्ष-विषाद पैदा नहीं होते। उपवास से सात्विक भाव बढ़ता है, राजस और तामस भाव का नाश होने लगता है, मनोबल तथा आत्मबल में वृद्धि होने लगती है। अतः अतिनिद्रा, तन्द्रा, उन्माद (पागलपन), बेचैनी, घबराहट, भयभीत या शोकातुर रहना, मन की दीनता, अप्रसन्नता, दुःख, क्रोध, शोक, ईर्ष्या आदि मानसिक रोगों में औषधोपचार सफल न होने पर उपवास विशेष लाभ देता है। इतना ही नहीं अपितु नियमित उपवास के द्वारा मानसिक विकारों की उत्पत्ति भी रोकी जा

सकती है।

उपवास पद्धति : पहले जो शक्ति खाना हजम करने में लगती थी उपवास के दिनों में वह विजातीय द्रव्यों के निष्कासन में लग जाती है। इस शारीरिक ऊर्जा का उपयोग केवल शरीर की सफाई के लिए ही हो इसीलिए इन दिनों में पूर्ण विश्राम लेना चाहिए। मौन रह सकें तो उत्तम। उपवास में हमेशा पहले एक-दो दिन ही कठिन लगते हैं। कड़क उपवास एक-दो बार ही कठिन लगता है फिर तो मन और शरीर दोनों को औपवासिक स्थिति का अभ्यास हो जाता है और उसमें आनन्द आने लगता है।

सामान्यतः तीन प्रकार के उपवास प्रचलित है- (१) निराहार (२) फलाहार (३) दुग्धाहार

(१) निराहार : निराहार व्रत श्रेष्ठ है। यह दो प्रकार का होता है - निर्जल एवं सजल। निर्जल व्रत में पानी का भी सेवन नहीं किया जाता। सजल व्रत में गुनगुना पानी अथवा गुनगुने पानी में नींबू का रस मिलाकर ले सकते हैं। इससे पेट में गैस नहीं बन पाती। ऐसा उपवास दो या तीन दिन रख सकते हैं। अधिक करना हो तो चिकित्सक की देख-रेख में ही करना चाहिए। शरीर में कहीं भी दर्द हो तो नींबू का सेवन न करें।

(२) फलाहार : इसमें केवल फल और फलों के रस पर ही निर्वाह किया जाता है। उपवास के लिएं अनार, अंगूर, सेवफल और पपीता ठीक हैं। इसके साथ गुनगुने पानी में नींबू का रस मिलाकर ले सकते हैं। नींबू से पाचन तंत्र की सफाई में सहायता मिलती है। ऐसा उपवास ६-७ दिन से ज्यादा नहीं करना चाहिए।

(३) दुग्धाहार : ऐसे उपवास में दिन में ३ से ८ बार मलाई-विहीन दूध २५० से ५०० मि.ली. मात्रा में लिया जाता है। गाय का दूध उत्तम आहार है। मनुष्य को स्वस्थ व दीर्घजीवी बनानेवाला गाय के दूध जैसा दूसरा कोई श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है।

गाय का दूध जीर्णज्वर, ग्रहणी, पांडुरोग, यकृत (Liver) के रोग, प्लीहा के रोग, दाह, हृदयरोग, रक्तपित्त आदि में श्रेष्ठ है। श्वास, टी.बी तथा पुरानी सर्दी के लिए बकरी का दूध उत्तम है

(४) रुढ़िगत उपवास : २४ घण्टों में एक बा[र] सादा, हल्का, नमक, चीनी व चिकनाई रहि[त] भोजन करें। इस एक बार के भोजन के अतिरिक्[त] किसी भी पदार्थ का सेवन न करें। केवल साद[ा] पानी अथवा गुनगुने पानी में नींबू ले सकते हैं।

सावधानी : जिन लोगों को हमेशा कफ जुकाम, दमा, सूजन, जोड़ों में दर्द, निम्[न] रक्तचाप (Low B.P.) रहता हो, वे नींबू क[ा] उपयोग न करें।

उपरोक्त उपवासों में केवल एक बात का ह[ी] ध्यान रखना आवश्यक है कि मल-मूत्र व पसीने का निष्कासन ठीक तरह होता रहे अन्यथा शरीर के अंगों से निकली हुई गन्दगी फिर से रक्तप्रवाह में मिल सकती है। आवश्यक हो तो एनिमा का प्रयोग करें।

लोग उपवास तो कर लेते हैं, लेकिन उपवास छोड़ने पर क्या खाना चाहिए ? इस पर ध्यान नहीं देते, इसीलिए अधिक लाभ नहीं होता। जितने दिन उपवास करें, उपवास छोड़ने पर उतने ही दिन मूँग का पानी लेना चाहिए तथा उसके दोगुने दिन तक मूँग उबालकर लेना चाहिए। तत्पश्चात् खिचड़ी, चावल आदि तथा अंत में सामान्य भोजन करना चाहिए।

उपवास के नाम पर व्रत के दिन आलू, अरवी, सांग, केला, सिंघाड़े आदि का हलवा, खीर, पेड़े, बर्फी आदि गरिष्ठ भोजन भरपेट करने से रोग की वृद्धि ही होती है। अतः इनका सेवन न करें।

सावधानी : गर्भवती स्त्री, क्षय-रोगी, अल्सर व मिर्गी (हिस्टीरिया) के रोगियों को व अति कमजोर व्यक्तियों को उपवास नहीं करना चाहिए। मधुमेह (डायबिटिज) के मरीजों को वैद्यकीय सलाह से ही उपवास करने चाहिए।

शास्त्रों में अग्निहोत्री, तथा ब्रह्मचारी को अनुपवास्य माना गया है।

[*साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, सूरत।*]

सद्गुरुदेव की चरणरज : एक अलौकिक निधि

दिनांक : ११ जुलाई २००० को माण्डल निवासी श्री सेवाजी गाडरी अचानक पागल हो गये। वे मेरे स्नेही हैं। उनके परिवार के सभी सदस्य उनकी दिन-रात की हरकतों से घबराकर दुःखी हो गये। १३ जुलाई को सायं उनकी पत्नी मेरे घर पर मुझे बुलाने आयीं। मैं संध्या-पूजन में बैठा था। मेरी पत्नी ने उनका दुःख सुना व मेरे पूजा-कक्ष से बाहर आने पर मुझे यह समाचार सुनाया। मैं एक क्षण विचारकर अपने पूजा-कक्ष से एक कागज की पुड़िया में परम पूज्य सद्गुरुदेव की चरणरज लेकर गया। उनकी दशा व हरकतें देखकर मेरी आँखों में भी पानी आ गया। मैंने पूज्य गुरुदेव का स्मरण करके उनकी चरणरज पानी में डालकर पीड़ित श्री सेवाजी को पिला दी। मैंने उनके परिवार के सदस्यों को उन्हें कहीं न ले जाने तथा थोडा इन्तजार करने के लिए कहा। सद्गुरुदेव की चरणरज के प्रभाव से तीन दिन में वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। यहाँ मुझे ये पंक्तियाँ याद आती हैं :

धूल तेरे चरणों की सद्गुरु चन्दन और अबीर बनी।
मस्तक पर है जिसने लगाई उसकी तो तकदीर बनी॥

मैं सद्गुरुदेव की जितनी महिमा गाऊँ उतनी कम है। उनके चरणों में कोटि-कोटि नमन ! उनकी कृपा सदा बरस रही है...

- जय प्रकाश भण्डिया, भगवानपुरा, निवासी माण्डल।

*

श्रद्धा से सब संभव

मुझे २२ फरवरी २००१ को बहुत उल्टियाँ हुई । हमने मालवीय नगर दिल्ली के सरकारी अस्पताल में खून और पेशाब की जाँच करायी। डॉक्टर ने पीलिया रोग बताया। बहुत इलाज कराने पर भी आराम न मिलने पर हमने बापूजी के करोल बाग में स्थित दिल्ली आश्रम के धन्वन्तरी आरोग्य केन्द्र में आखिरी प्रयत्न करने का विचार किया। वहाँ के वैद्य के निर्देशानुसार दवाई लेना शुरू किया साथ ही बापूजी के शक्तिपात किये हुए बड़ बादशाह की परिक्रमा करना भी शुरू किया। एक सप्ताह में ही हमें चमत्कारिक लाभ दिखाई दिया।

काफी हद तक बढ़ा हुआ पीलिया १५ दिन में ही ठीक हो गया। यह देखकर डॉक्टर भी हैरान रह गये। यह सब निर्दोष भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति एवं बड़ बादशाह का ही चमत्कार है। कुछ वर्ष पहले पीलिया से ग्रस्त मेरी चाची को खूब एलोपैथिक उपचार कराने पर भी मृत्यु का शिकार होना पड़ा। काश ! समय पर हम उन्हें यहाँ ला पाते, तो उन्हें भी बापूजी की कृपा का सहारा मिलता।

- पूजा उप्पल, मालवीय नगर, दिल्ली।

*

मौत के मुख से वापसी

२९ सितम्बर '९९ को सुबह नौ बजे हम चार लड़के बोर्ड का फार्म भरने केलिए दो होण्डा मोटरसाइकिल पर सवार होकर भीलवाड़ा से अजमेर के लिए निकल पड़े। मैंने 'श्रीआसारामायण' का मौखिक पाठ आरम्भ कर दिया। पाठ लगभग पूरा होने को था और हम भीलवाड़ा से ६० कि.मी. दूर निकल चुके थे। हमें ७० कि.मी. और चलना ही था कि हम हाइवे पर जिस ट्रक को दाहिने तरफ से पार कर रहे थे वह उसी तरफ मुड़ गया और हमारा एक्सीडेन्ट हो गया। एक्सीडेन्ट इतना खतरनाक था कि हमारी पूरी गाड़ी बिखर गई और उसी समय हमें ऐसा लगा कि जैसे किसी अदृश्य शक्ति ने हमें बाहर उछाल फेंका हो। हम मौत के मुँह में जाकर भी वापस जिंदा आ गये। हम दोनों को उस वक्त साधारण चोटें आईं, दोनों के बाएँ हाथ में फ्रैक्चर हो गये। जब हम ट्रक के नीचे से जिंदा निकले तो लोग आश्चर्य कर रहे थे और हम दोनों उस अदृश्य शक्ति श्री सद्गुरुदेव को मन-ही-मन प्रणाम कर रहे थे।

- लादूलाल वर्मा, गायत्री नगर, भीलवाड़ा (राज.).

*

गौमूत्र अर्क का चमत्कार

मैं पेशे से एक डॉक्टर हूँ। मैं व मेरे पति देवली, जिला टोंक में एक प्राइवेट नर्सिंग होम चलाते हैं। मैं पिछले करीब एक वर्ष से घुटने के दर्द से पीड़ित थी। आश्रम द्वारा संचालित निवाई स्थित गौशाला में बन रहे गौमूत्र अर्क लेने की मुझे सलाह मिली। मैं पिछले एक माह से नियमित रूप से रोज सुबह गौमूत्र अर्क का सेवन कर रही हूँ। इससे मुझे घुटने के दर्द में तो संपूर्ण राहत मिली ही साथ-साथ मेरी शर्करा जो अधिक थी वह भी नियंत्रण में आ गयी।

इसके अलावा तनाव, अपचन आदि परेशानियों से भी राहत मिली व शरीर में एक नयी स्फूर्ति का अहसास हुआ।

यह सब पूज्य गुरुदेव श्री आसारामजी बापू व आश्रम द्वारा निर्मित गौमूत्र का ही चमत्कार है।

- डॉ. कल्पना जिन्दल
महेश नर्सिंग होम, देवली, जिला-टोंक (राज.).
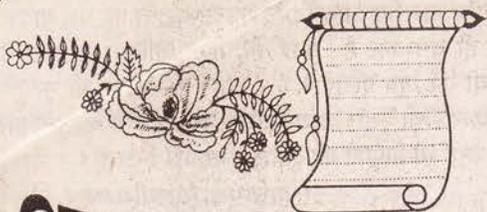
आप कहते हैं...

भारत भूमि सदैव से ही ऋषि-मुनियों तथा संत-महात्माओं की भूमि रही है, जिन्होंने विश्व को शांति एवं अध्यात्म का संदेश दिया है । आज के युग में पूज्य संत श्री आसारामजी द्वारा अपने सत्संगों में दिव्य आध्यात्मिक संदेश दिया जा रहा है, जिससे न केवल भारत वरन् विश्वभर में लोग लाभान्वित हो रहे हैं ।

- सुरजीत सिंह बरनाला
राज्यपाल, उत्तरांचल ।

*

उत्तरांचल राज्य का सौभाग्य है कि देवभूमि में देवता स्वरूप पूज्य बापूजी का आश्रम बन रहा है । आप ऐसा आश्रम बनायें जैसा कहीं भी न हो । यह हम लोगों का सौभाग्य है कि अब पूज्य बापूजी की ज्ञानरूपी गंगाजी स्वयं बहकर यहाँ आ गई हैं । अब गंगा जाकर दर्शन करने व स्नान करने की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी संत श्री आसारामजी बापू के चरणों में बैठकर उनके आशीर्वाद लेने की है ।

- श्री नित्यानंद स्वामीजी
मुख्यमंत्री उत्तरांचल ।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा । जो सदस्य १०४ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जून २००१ के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें ।

मैंने पत्रकारिता के व्यवसाय को बहुत नजदीक से देखा है । भारत के प्रसिद्ध ''टाइम्स ऑफ इन्डिया ग्रुप'' को कौन नहीं जानता । उस ग्रुप की चेयरमैन श्रीमती इन्दु जैन बहुत व्यस्त रहती हैं और दिल्ली एवं मुंबई के कार्यालय सँभालती हैं ।

८ मई २००१ को अरूणाचल प्रदेश में एक हेलीकॉप्टर दुर्घटना में श्रीमती जैन की ४२ वर्षीय पुत्री नंदिता प्रभु को प्यारी हो गयी, जो अरूणाचल प्रदेश में स्कूल खोलने जा रही थीं ।

श्रीमती इन्दु जैन को सांत्वना देने के लिए भारतभर से विशिष्ट व्यक्ति पहुँचे, परंतु आश्चर्य को भी आश्चर्य हुआ... श्रीमती इन्दु जैन को इस दुःखद प्रसंग में भी शांत और संयमित देखकर उनके सभी रिश्तेदार, पड़ोसी, मित्र, 'टाइम्स ऑफ इन्डिया ग्रुप' के कर्मचारीगण एवं अन्य अखबारों के विशिष्ट व्यक्ति सभी स्तब्ध रह गये ।

श्रीमती इन्दु जैन की इस आश्चर्यमयी स्थिति को देखकर मेरे से भी रहा नहीं गया । मैंने उनके नजदीकी लोगों से इसका रहस्य जानना चाहा तो उन्होंने बताया कि जबसे श्रीमती इन्दु जैन ने परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू का आशीर्वाद पाया है और जैसे-जैसे उनका सत्संग आत्मसात करती गयी हैं वैसे-वैसे उनके जीवन में गहराई और आत्मिक शांति देखने को मिल रही है ।

यह पूज्य संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग का ही प्रभाव था कि श्रीमती इन्दु जैन स्वयं सबको समझा रही थी कि : 'नंदिता ने केवल अपना यह देह छोड़ा है, उसकी आत्मा तो अमर है ।'

पत्रकारिता के व्यवसाय में रहकर भी श्रीमती इन्दु जैन के व्यक्तित्व में पूज्य बापूजी के सत्संग के बाद आया यह परिवर्तन देखकर, मैं अभी भी आश्चर्यचकित हूँ । ''यकीनन गंभीर परिस्थितियों में सत्संग किसी व्यक्ति की जितनी सहायता कर सकता है, उतनी सहायता और कोई नहीं कर सकता ।''

- रोमिला सूरी (समाजसेविका), दिल्ली ।

सुजानपुर (जम्मू-कश्मीर) : २२ अप्रैल । एक दिवसीय सत्संग-प्रवचन संपन्न हुआ। पठानकोट, कठुआ व सुजानपुर के भक्तों व समितियों के अनुरोध पर पूज्यश्री ने अपने एकान्तवास के अनमोल क्षणों में यहाँ प्रवचन दिया। ज्ञान, भक्ति व ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषों के सत्संग-दर्शन व मार्गदर्शन के पिपासु श्रद्धालु अपने आत्मवेत्ता पूज्यश्री को पाकर खूब आनंदित हुए।

जम्मू : २६ से २९ अप्रैल । चार दिवसीय सत्संग समारोह संपन्न हुआ। राज्य में पूज्यश्री का अभिवादन करते हुए वहाँ की सरकार ने पूज्यश्री को ''Guest of State'' घोषित किया।

सत्संग-प्रवचन के दौरान योगनिष्ठ पूज्यपाद बापू ने ज्ञानभक्तियोग की त्रिवेणी में जम्मूवासियों को सराबोर कर दिया। उपस्थित भक्तसमुदाय भावसमाधि में सराबोर हुआ, पावन हुआ। २८ अप्रैल का प्रातःकालीन सत्र विशेषरूप से विद्यार्थियों के लिए था। हजारों छात्र-छात्राओं ने जीवन में सफलता के स्वर्णिम सूत्र पूज्यश्री की अनुभवसंपन्न वाणी से प्राप्त किये। उन्हें तेजस्वी-ओजस्वी बनाने के लिए, याददाश्त बढ़ाने के लिए, राष्ट्र के भावी कर्णधार बनाने के लिए, देश की बागडोर संभालने के लिए उनके कंधे मजबूत करने के लिए संत श्री ने सारस्वत्य मंत्र प्रदान किया। उक्त मंत्र का नियमित जप करनेवाले व मार्गदर्शनानुसार चलनेवाले विद्यार्थी निश्चित ही भविष्य में राष्ट्र के उच्च पदों पर शोभायमान होंगे। माता-पिता, गुरुजनों व देश का नाम रोशन करेंगे।

शाम के सत्र में जम्मू-कश्मीर के मुख्यमंत्री श्री फारूख अब्दुल्ला अपने मंत्रिमंडल के अन्य मंत्रियों के साथ पूज्यश्री के दर्शन व आशीर्वाद प्राप्त करने आये। अपने संबोधन की शुरुआत उन्होंने रामधुन से की : 'कब आओगे मोरे द्वार... मेरे राम... गली-गली ढूँढा... नाहीं मिले मोरे राम... कब आओगे मोरी गली मेरे राम... मेरे राम...'

उन्होंने पूज्यश्री की ओर हाथ जोड़ते हुए कहा : ''महाराज जी, हम सबके दिल में एक कामना है कि हम अमन-चैन से रहना चाहते हैं, मगर देश के अंदर व बाहर ऐसी ताकतें हैं जो हम लोगों को लड़ाती रहती हैं। मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि वे ताकतें कभी ताकतवर न हों।

हमारा ये पड़ोसी (पाकिस्तान) हमें तंग करता रहता है। हम उनसे बार-बार कहते हैं कि भाई, तुम अपना घर संभालो, हमें अपना घर संभालने दो। न तो उनसे अपना घर संभलता है, न वे दूसरे के घर को संभलता हुआ देखना चाहते हैं। मगर उसे पता नहीं कि सबसे बड़ी चीज फौज की ताकत नहीं है, सबसे बड़ी चीज परमात्मा की ताकत है। हम सब दिल से परमात्मा से प्रार्थना करें। मुँह से तो हम प्रार्थना करते ही रहते हैं मगर उसका कोई असर नहीं होती। हम पाँच बार नमाज पढ़ते हैं, जोर-जोर से अल्लाह का नाम चिल्लाते हैं। मगर जब तक दिल साफ नहीं हो तब तक आवाज उधर नहीं पहुँचती। आप जैसे खुदा के प्यारे, जिनको उन्होंने ये रोशनी बख्शी है उनसे हम सब प्रार्थना करते हैं कि न सिर्फ इस प्रांत में बल्कि सम्पूर्ण देश में अमन-चैन आये और हम तरक्की की राह पर चलें। खुदा मंदिर और मस्जिद में नहीं बसता। वह इंसानों के दिलों में बसता है।

अगर हिंदू मेरी आँखों में डाले अपनी आँखें,
तो उसको अपना राम दिखेगा।
अगर मैं उसकी आँखों में डालूँ अपनी आँखें,
तो मुझे अल्लाह दिखेगा॥

बापूजी, मैं उम्मीद करता हूँ कि आप यहाँ आये, अब इस धरती में शांति आयेगी।''

पटियाला (पंजाब) : ३० अप्रैल से २ मई। त्रिदिवसीय भक्ति-ज्ञान-योग वर्षा सत्संग समारोह संपन्न हुआ। वर्षों से पटियाला के सत्संगी बापू के यहाँ पधारने के लिए व्रत-उपवास और मनौतियाँ माने हुए थे। पटियाला में सत्संग लाभ पाने के लिए किसी ने अन्न छोड़ रखा था, तो किसी ने दाढ़ी, बाल बनवाना छोड़ रखा था। वर्षों के व्रत-उपवास और प्रार्थनाएँ फलीं। अद्भुत आनंद उमड़ा सभी दिलो में। प्रभु प्रेमियों को मिला जीवन्मुक्त ब्रह्मज्ञानी संत का सुरस छलकाने वाला आत्मामृत। पूज्यश्री ने महिलाओं को सौन्दर्य प्रसाधन की वस्तुओं के उपयोग के प्रति सचेत करते हुए कहा कि : **केमिकल और पशुओं के खून से बनी लिपस्टिक से होंठो को क्या रंगना, अपने को ईश्वर के रंग में रंग दो।**

लाली मेरे लाल की जित देखूं ऊत लाल।
लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गई लाल॥

३० अप्रैल को पंजाब के मुख्यमंत्री श्री प्रकाश सिंह बादल तथा राज्य के अनेक मंत्री पूज्यश्री के दर्शन व आशीर्वाद प्राप्त करने आये। पूज्य बापूजी ने उन्हें पंजाब की जनता के हित में अनेक बातें कही, जिसे उन्होंने स्वीकार किया और तुरन्त कार्यवाही करने का वचन भी दिया।

नोएडा (उ.प्र.) : ५ से ७ मई । त्रिदिवसीय गीता-भागवत सत्संग व पूर्णिमा दर्शनोत्सव संपन्न हुआ।

सुख-दुःख में सम रहने की प्रेरणा देते हुए पूज्यश्री ने कहा कि : ''**सुख-दुःख दोनों मनुष्य को कमजोर करते हैं, दुःख डराकर कमजोर करता है और सुख फँसाकर। अतः सुख-दुःख में महत्त्वबुद्धि न रखें। सुख-दुःख महत्त्वपूर्ण चीज नहीं है, समता और आत्मिक प्रसन्नता ही सार है।**''

सहारनपुर (उ.प्र.) : ६ से ९ मई। प्रथम दो दिन श्री नारायण साँई के प्रवचन के बाद ८ मई को पूज्यपाद बापूजी वहाँ पहुँचे। पूज्यश्री ने समाज के उपभोक्ता वर्ग को सचेत करते हुए कहा कि : ''बड़ी-बड़ी कंपनियाँ विज्ञापन करके उपभोक्ताओं की जेबें लूट रही हैं। आप आकर्षक विज्ञापनों से प्रभावित न हों। आज भी समुद्र किनारे नमक १० पैसे प्रति किलो मिलता है। विज्ञापनों की भरमार आपको वही चीज ७ रुपये प्रति किलो तक खरीदने को बाध्य कर रही है। आयोडीनयुक्त नमक

कहकर पब्लिक को लूटा जा रहा है। आयोडीन का स्प्रे भी ५-१० पैसे प्रति किलो तक ही हो जाता है। आयोडीनयुक्त नमक पहाड़ी इलाके वालों के लिए थोड़ा-बहुत उपयोगी हो सकता है अन्य इलाकों के लिए यह कतई आवश्यक नहीं है- ऐसा डॉक्टरों का कहना है। १०-२०-५० पैसे की चीज जनता ७ रुपये में खरीद रही है! कोई आवाज उठानेवाला नहीं है, नेता कहाँ सो गये हैं ? गाँधीजी ने नमक के भाव दो पैसे बढ़ने पर सत्याग्रह किया था, डांडी कूच किया था। भारतवासी इतने लूटे जा रहे हैं तब आज के नेता कहाँ सो गये हैं ? क्या वोट लेने के समय ही उनकी नींद खुलती है ? ऐसे ही शैम्पू आदि कई चीजों में विज्ञापनों के द्वारा भारतवासी लूटे जा रहे हैं।

यमुनानगर-जगाधरी (हरियाणा) : १० से १३ मई। प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी के प्रवचन हुए। प्रवचन शुभारम्भ के पूर्व कलशधारी महिलाओं ने एक मनमोहक कलशयात्रा निकाली। 'संत श्री आसारामजी आश्रम, मनोहर कालोनी' से शोभायात्रा प्रारंभ होकर नगर के विभिन्न मार्गों से होते हुए कथा-स्थल पर समाप्त हुई। जहाँ कलश स्थापित किये गये। अंतिम दिन विशाल भंडारे का आयोजन किया गया जिसमें असंख्य श्रमिकों ने सत्संग के साथ-साथ सपरिवार भोजन प्रसाद पाया।

***

पूज्यश्री के ६० वें अवतरण दिवस पर श्री अखिल उत्तर प्रदेश योग वेदान्त सेवा समिति, आगरा द्वारा आयोजित कार्यक्रम में सत्‌शिष्यों द्वारा सामूहिक रूप से निम्न संकल्प किये गये :

* हमारे पूज्य सद्‌गुरुदेव श्री आसारामजी बापू का तनबल तथा आत्मबल दिनों-दिन बढ़ता रहे। * पूज्यश्री के द्वारा समग्र मानव जाति को दिव्य सनातन संस्कृति के ज्ञान, आनंद व शांति का प्रसाद मिलता रहे। * साधकों द्वारा दिव्य सनातन संस्कृति का पूरे विश्व में प्रचार हो। * अपने नित्य नियम एवं सामूहिक सत्संग में उपरोक्त शुभ संकल्प दोहराने का नियम भी लिया गया।

वैष्णव जन तो तेने कहिये, पीड़ पराई जाने रे।

वैष्णव देवी जानेवालों को जाते व आते समय ५० रुपये टोल टैक्स भरना पड़ता था। मध्यम वर्गीय लोग इस मँहगाई के जमाने में व्यथा का अनुभव कर रहे थे, उनकी इस व्यथा को पूज्य बापू ने जम्मू-कश्मीर के मुख्यमंत्री श्री फारुख अब्दुल्ला के समक्ष रखा। उन्होंने वचन देते हुए कहा : ''ऑफिस खुलते ही पहला काम मैं यही करूँगा। आप भले सभा में घोषणा कर दें।'' दूसरे दिन उनके मंत्रीमंडल के अन्य मंत्री सत्संग में आये। उन्होंने भी इस घोषणा का अनुमोदन किया।

वैष्णव देवी जानेवालों की व्यथा निवृत्त हुई। और भी कई जगहों पर यात्रियों से अकारण टोल टैक्स नोचा जाता है। स्थानिय असामाजिक तत्त्वों व पुलिस की सांठगांठ से नकली बैरियर बनाकर भी लूट चलायी जाती है। सरकारी तंत्र और सी.बी.आई. तंत्र अगर प्रजा को इस पीड़ा से बचाना चाहें तो यह उनके लिए दो दिन का खेल है।

नमूना देखना हो तो हरिद्वार से बद्रीनाथ तक यात्रा करके देखिये।

पूज्य बापू के आगामी कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	स्थान	संपर्क फोन
२ से ५ जून	हरिद्वार	गीता-भागवत सत्संग पूज्य बापूजी एवं श्री नारायण साँई द्वारा	पंत द्वीप, हरिद्वार।	(०१३३) ४२६५१६, ४६१८७६.
२४ से २६ जून दोपहर तक	दिल्ली	गुरुपूर्णिमा दर्शन महोत्सव	टी.वी. टॉवर, पीतमपुरा, रोहिणी।	(०११) ५७२९३३८, ५७६४१६१.
२८ से ३० जून दोपहर तक	भोपाल	गुरुपूर्णिमा दर्शन महोत्सव	संत श्री आसारामजी आश्रम, नरसिंहगढ़ रोड, पेट्रोल पंप के पीछे।	(०७५५) ७४२५००, ७४२५९९.
१ से ३ जुलाई शाम तक	मुंबई	गुरुपूर्णिमा दर्शन महोत्सव	बोम्बे एग्जीबिशन सेन्टर, एन.एस.सी. कॉम्पलेक्स, वेस्टर्न एक्सप्रेस हाइवे, गोरेगाँव (पू.), मुंबई।	(०२२) ८७८९०९५, ६३६३१२५, ५७०३०८३.
५ से ८ जुलाई दोपहर तक	अमदावाद	गुरुपूर्णिमा दर्शन महोत्सव	संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद।	(०७९) ७५०५०१०-११.

* *दिनांक २७ जून एवं ४ जुलाई को पूज्य बापूजी अज्ञातवास में रहेंगे।*
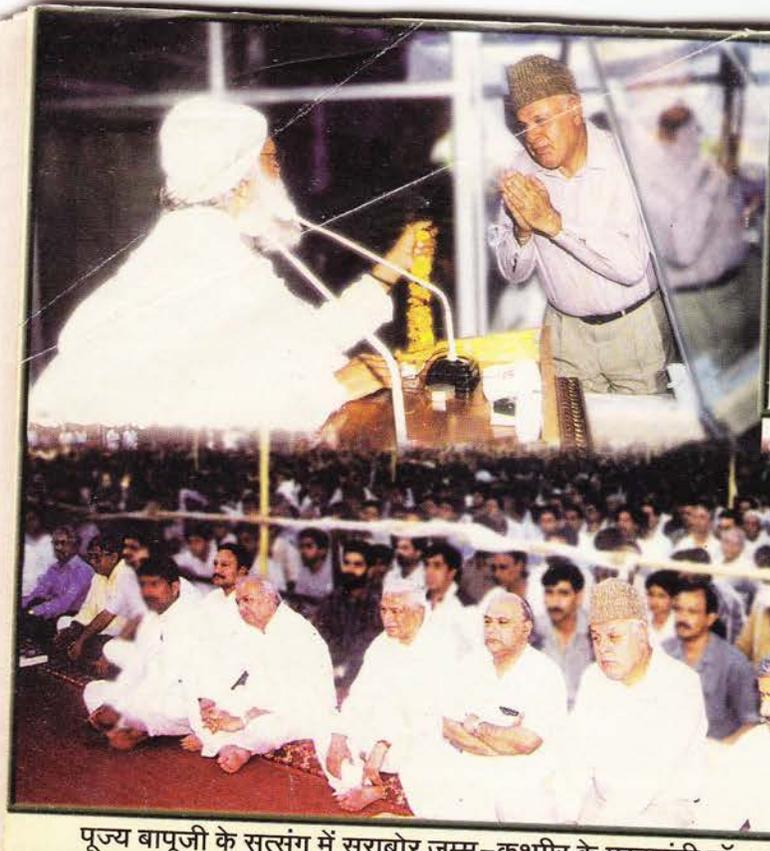
पूज्य बापूजी को नमन कर आशीर्वा
प्राप्त करते हुए जम्मू कश्मीर के मुख्यमंत्री डॉ
फारूख अब्दुल्ला ने कहा कि : ''बापूजी
पड़ोसी (पाकिस्तान) अपना घर तो सँभाल
नहीं पा रहे और हमें अमन चैन से रहने नहीं
देते हैं। सबसे बड़ी चीज संतों की दुआ है,
परमात्मा की ताकत है । हम हिंदुस्तानी
मुसलमान हैं। हमारे हिन्दुस्तान में अमन चैन
रहे, ऐसी आप दुआ करें।''

पूज्य बापूजी के सत्संग में सराबोर जम्मू-कश्मीर के मुख्यमंत्री डॉ. फारूख अब्दुल्ला एवं उनके मंत्रीगण।

पूज्यश्री के पावन प्रेरक मार्गदर्शन में अपनी महान भारतीय संस्कृति की गरिमा का परिचय पाते हुए जम्मू के विद्यार्थी।

वर्षों की मनौतियाँ एवं व्रत-उपवास फलित हुए, जब पटियाला के सत्संग प्रेमियों के साथ-साथ पंजाब के मुख्यमंत्री श्री प्रकाश सिंह बादल को भी मिला जीवनमुक्त ब्रह्मज्ञानी पूज्य बापूजी का आत्म-अमृत।

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED. NO. GAMC/1132/2001. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2001 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2001 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2001 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.